सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

संस्थापक, सम्पादक तथा संरक्षक
योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष

अङ्क ४

वार्षिक मूल्य
१० रुपया

एक अंक
का १ रुपया

जुलाई
१९६९

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे

काको नाम पतित-पावन जग केहि अति दीन पियारे ।।
कौने देव बराइ बिरद-हित हठि-हठि अधम उधारे ।
खग मृग व्याध पषान बिटप जड़ जवन कवन सुर तारे ।।
देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया-बिबस बिचारे ।
तिनके हाथ दासतुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ।।

—गोस्वामी तुलसीदास

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सवाँई एत्मादपुर जिला आगरा ।

हमारा विशेष लेख—

यमों की साधना

(योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह यह पाँच साधनाएं यम कहलाती हैं, इनमें यम नियमों की सब साधनाओं की आधारभूत अहिंसा है। इसी सूत्र का अर्थ करते हुये भगवान् व्यासदेव अहिंसा के अर्थ को स्पष्ट करते हुये लिखते हैं।

अहिंसा–

तत्राहिंसा – सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः, उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलास्तत्सिद्धिपरतया तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते, तदवदातरूपकरणायैदोपादीयन्ते तथा चोक्तं— "स खल्वयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि बहूनि समादित्सते तथा तथा प्रमादकृतेभ्यो हिंसानिदानेभ्यो निवर्तमानस्तामेवावदातरूपाम् अहिंसा करोति।

अर्थात् अहिंसा के अतिरिक्त शेष यम नियम अहिंसा की पुष्टि के लिए ही हैं। इस विषय को इस प्रकार समझ लेना चाहिये। उदाहरणार्थ हम सत्य बोलते हैं, सत्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुये भगवान व्यासदेव जी ने निम्नलिखित पंक्तियां लिखी हैं :—

सत्यं—यथार्थे वाङ्गमनसे, यथादृष्टं यथाऽनुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्मश्चेति, परत्र स्वबोधसङ्क्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्ति बन्ध्या वा भवेदिति एषा सर्वभूतोपकारार्थ प्रवृत्ता न भूतोपघाताय यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघातपरैव स्यान्न सत्यं भवेत्, पापमेव भवेत् तेन पुण्याभासेन पुण्यप्रतिरूपकेण कष्टतमं प्राप्नुयात॥

अर्थात् यथार्थ वाणी जैसे देखी सुनी व अनुमान की हुई, दूसरे को अपना अर्थ समझाने के लिये न वंचना से युक्त, न भ्रान्तियुक्त व न अस्पष्टार्थ कही हुई, जो प्राणिमात्र के परोपकार के लिए मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य प्रयुक्त होती है वही वाणी सत्य कहलाती है। इसी के द्वारा प्राणिमात्र का भला होता है। इसलिए सत्यवादन अहिंसा की निर्मलता के लिए और इसी प्रकार अस्तेय आदि जो हैं वो भी अहिंसा की निर्मलता के लिए अन्य सब प्रकार के व्रताचरण अहिंसा धर्म को ही परिपुष्ट करते हैं। यह अहिंसा किसी जाति, किसी देश और किसी काल व समय से युक्त न हो और सार्वभौमिक अहिंसा हो तो महाव्रत कहलाती है। यथा भगवान पतञ्जलि के शब्दों में :—

**जाति देश काल समयानवच्छिन्नाः
सार्वभौमा महाव्रतम्।**
[योगसूत्र २/३/१]

जाति देश आदि का अभिप्राय :-

जैसे मछली मारने वाले केवल मछली ही मारते हैं। उनकी हिंसा मछली जाति में है। दूसरी सब जगह वे अहिंसक हैं। देश में तीर्थ आदिकों में जो बलिदान देने की प्रथा है वह स्थान विशेष की हिंसा है। इसलिए देश विशेष की हिंसा और इसी प्रकार जो व्यक्ति किसी खास पुण्य-काल में हिंसा करते हैं, जैसे पुण्य-विषय किसी खास समय पर आने वाली अष्टमी, चतुर्दशी आदि में बलि का विधान होता है वह कालविशेष हिंसा या कालगता हिंसा कहलाती है इसी प्रकार जो किसी खास विशेष समय के लिए बड़े-बड़े किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए हिंसा की जाती है, वह समय की हिंसा कहलाती है। इन्हीं सभी प्रकार की हिंसाओं से निकलकर प्राणिमात्र में, सब देशों में, सब काल में और बड़े से बड़े किसी महान कार्य के लिए भी जो हिंसक नहीं वह अहिंसा रूप महाव्रत का धारण करने वाला बन जाता है।

हिंसा की हुई, कराई हुई, लोभ से, क्रोध से और मोह से व मृदु, मध्य व अधिमात्रादि भेदों से सैकड़ों भेदों की-है। पूर्व अहिंसाव्रती वही कहला सकता है जो लोभ, क्रोध, मोह के वश में होकर किसी भी प्र.ार की हिंसा न करे न कराये न अनुमोदन करे। भगवान पतंजलि जो लिखते है :—

वितर्क बाधने प्रतिपक्षभावनम्।

[योगसूत्र २/३३]

अर्थात् जब जब साधक के सामने हिंसा व्रत आए तब तक उसको प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिए। मनुष्य लोभ, क्रोध, मोह के वश में होकर सोचता है कि मैं अपने शत्रु को मार डालूंगा। और झूठ बोलना पड़े तो झूठ भी अवश्य बोलूंगा, इसके धन को चुरा लूंगा। इसकी स्त्री से बलात्कार करूँगा और उसके स्थान आदि को जबर्दस्ती छीनकर उसका मालिक हो जाऊँगा, इत्यादि भाव जिस समय साधक के मन में प्रबलता धारण करें तो साधक को इसके अतिरिक्त विपरीत भावनाओं को अपने हृदय में स्थान देना चाहिए। उसे सोचना चाहिए कि संसाराग्नि के घोर अंगारों में पिसते हुए मैंने प्राणिमात्र को अभय देने वाला योग अपनाया है। अब मैं पुनः इस अग्नि में नहीं पड़ूंगा। इस प्रकार की भावनाओं को दृढ़ करता हुआ मनुष्य कृता, कार्यता अनुमोदिता आदि तीनों प्रकार की हिंसाओं से बचकर के पूर्ण अहिंसाव्रत को प्राप्त करता है। यह प्राणिमात्र के प्रति वैर छोड़ देता है और इसके प्रति भी प्राणिमात्र वैर छोड़ देते हैं—भगवान् पतञ्जलिजी—अहिंसा की पूर्ण पराकाष्ठा का फल बतलाते हैं :—

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

[योगसूत्र २/३५]

अर्थात् अहिंसा की पराकाष्ठा को पहुँच जाने वाले साधक के प्रति प्राणिमात्र वैर छोड़ देते हैं, इसी कारण से इस अहिंसा के प्रतीक हमारे ऋषि मुनियों के आश्रमों में

शेर, चीता और साधारण अन्य मृगादिकों का समान-भाव से रहना सुनते हैं।

दूसरा यम सत्य है। सत्य की परिभाषा ऊपर अहिंसा की पुष्टि में बतला चुके हैं अर्थात् मनसा, वाचा, कर्मणा प्रयुक्त की हुई वह वाणी जिसमें किसी को धोखा न दिया जाय सत्य कहलाती है।

सत्य के लिए उपनिषदों में बड़े बड़े शब्द मिलते हैं।

सत्यं ज्ञानमनंतम् ब्रह्म ।

[तैत्ति० २/१/१]

सत्य प्रभु का रूप है तथा वाणी का तप है।

सत्यने लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
स्म्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येणा
नित्यम् अंतः शरीरे ज्योतिर्मयोहि
शुभ्रो य पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥

सत्यमेव जयते नानृतम ।
सत्येन पन्थाः विततो देवयान ॥

अर्थात् सत्य, ज्ञान, ब्रह्मचर्य के द्वारा ही अन्तः शरीर में शुभ्र ज्योतिर्मय आत्मा को देखता है, जिसे दोषों को क्षीण कर यति लोग भी कठिनाई से देख पाते हैं। सदैव सत्य की ही जय होती है, देवों का मार्ग सत्य से विस्तृत है। भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज ने श्री मद्भगवद् गीता के सत्रहवें अध्याय के तेइसवें श्लोक में सत् शब्द ब्रह्म का नाम बतलाया है। यथा —

ॐ तत्सदिति निर्दिशो
ब्रह्मणास्त्रि विधस्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदांश्च
यज्ञांश्च विहिताः पुरा ॥

अर्थात् ॐ तत् सत् यह तीन प्रकार का ब्रह्म का ही नाम है व इसी के द्वारा वेद यज्ञ व ब्राह्मणों का विधान हुआ। इसी प्रकार का संकेत उपनिषदों में स्थान-स्थान पर भरा है।

सत्यं ज्ञानमनन्त ब्रह्म

[तैत्ति ३२-१-१]

सत्यं ब्रह्म —

(बृहदारण्यक उपनिषद्) ५/५/१

अर्थात् सत्य ही ब्रह्म है।

श्री विष्णु सहस्र नाम में भगवान को "सत्यः सत्यपराक्रमः" कह कर स्तुति की गई है। श्री मद्भागवत पुराण के दशम स्कन्ध के दूसरे अध्याय में गर्भ स्तुति के वर्णन में श्री भगवान कृष्ण चन्द्र को परम सत्य व सत्यात्मक शब्दों से सम्बोधित करके स्तुति की है। यथा —

सत्य व्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यंस्ययोनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यंस्यसत्यामृतं सत्यंनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणप्रपन्नः ॥

अर्थात् हे प्रभो आप सत्यव्रत, सत्यपरायण व तीनों कालों में परम सत्य हैं। सत्य ही आपकी प्राप्ति का मुख्य साधन है क्योंकि

आप सत्यात्मक हैं।

उन सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्दघन प्रभु का स्वरूप सत्य है। वे स्वयं सत्य हैं, सत्य स्वयं परब्रह्म है। सत्य की महाशक्ति का वर्णन करते हुये हमारे पूर्वजों ने बड़े ऊंचे स्वर से कह दिया है:—

सत्येन वायुरावति सत्येनादित्यो रोचते दिवि सत्य वाचः।
प्रतिष्ठा सत्ये सर्व प्रतिष्ठितं तस्मात्सत्यं परं वदन्ति।

(—नारायणोपनिषद ७९१)

सत्य ही जय का मुख्य साधन है।

सत्यमेव जयते नानृतं,
सत्येन पंथा विततो देवयानः।
ये ना क्रमन्त्यृषयोह्याप्तकामाः
यत्रतत्सत्यस्य परमं निधानम्॥

(मुण्डकोपनिषद् ३/१/६)

अर्थात् सदा सर्वदा सत्य की ही जय होती है। इस सत्य का अवलम्ब लेकर ऋषिलोग आप्तकाम हो गए व उस सत्य के परम प्रतिष्ठा रूप प्रभु को सरलता से प्राप्त कर लिया। भगवान मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के बनवास हो जाने के बाद उन्हें लौटाने के विचार से गए हुये वशिष्ठ वामदेव आदि गुरुजनों के प्रति सत्य की महिमा को हृदय में धारण करते हुये श्री रामचन्द्र जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा —

सत्य मेवानृशसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात्यसतात्मकं राज्यं सत्यो लोके प्रतिष्ठितः।
ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेवहि मेनिरे।
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परं-गच्छति चाव्ययम्॥
उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृत वादिनः।
धर्मसत्य परो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते॥
सत्यमेवे श्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्य मूलानि सर्वाणि, सत्यान्नास्ति परं पदम्॥
दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्य प्रतिष्ठा-नास्तस्मा त्सत्यपरो भवेत्॥

(वाल्मीकि रा० अयोध्याकाण्ड सर्ग१/१०/१४)

अर्थात् सत्य ही सनातन राजवृत्त है। राज्य भी व लोक भी सत्य ही में प्रतिष्ठा है। ऋषि मुनि व देवता सभी ने सत्य को माना है —यही सनातन धर्म है। सत्यवादी तो इस लोक में अव्ययपद को प्राप्त करता है। जिस प्रकार मनुष्य सर्प से डरते हैं उसी प्रकार अनृतवादी से डरना चाहिए। क्यों कि इस संसार में सत्य ही परम तत्व है व सभी शुभों का मूल है।

इस लोक व परलोक में सत्य ही ईश्वर है। धर्म सदा सत्य के आश्रित है, सर्व विश्व का मूल है। सत्य से बढ़कर कोई तत्व नहीं है। सत्य ही परम तत्व है। सभी दान, अनुष्ठान, यज्ञ व तप सत्य पर आधारित हैं। इसी प्रकार चारों वेद सत्य द्वारा ही प्रतिष्ठा पाने वाले हैं। अतः कल्याण चाहने वाले को सत्यपरायण होना चाहिए। इस प्रकार सत्य की महान् महिमा को बतला कर भगवान

श्री रामचन्द्र जी अपने व अपने पिताजी के सत्य वचन के पालन के लिए अयोध्या नहीं लौटे।

ठीक इसी भाव को गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने रामचरित-मानस में स्पष्ट लिखा है —

सत्य मूल सब सुकृत सुहाये,
वेद पुरान विदित मनु गाए।
धर्म न दूसर सत्य समाना,
आगम निगम पुरान बखाना।
नहिं असत्य सम पातक पुंजा,
गिरि सम होइ कि कोटिक गुंजा।

इसी प्रकार अन्य सन्तों की वाणियों में श्री सत्य की महान महिमा का वर्णन कूट-कूट कर भरा पड़ा है।

जाके हृदय सांच है, वाके हृदय आप।

अर्थात् जिसके हृदय में सत्य है, वही प्रभु का भी वास है। ठीक यही भाव महाभारत में व अन्यान्य आर्य ग्रन्थों में भरे पड़े हैं—

अश्वमेघसहस्र च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेघसहस्रभ्यः सत्यमेव विशिष्यते ॥
सर्ववेदाधिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम्
सत्यं च वचनं राजन् सत्रं वा स्यान्नवासमम्।
नास्ति सत्यसमो धर्मो,न सत्याद्विशिष्यते परम्।
न तीव्रतरं किंचिद नृतादिह विद्यते ॥

(महाभारत आदि पर्व ७४–१०२–१०५)

अर्थात् सहस्त्रों अश्वमेघ यज्ञ की तुलना करें तो सत्य ही उत्कृष्ट है — इसी प्रकार सारे वेदों का पढ़ना, तीर्थ-स्नान सत्य की तुलना में नहीं आ सकते — सत्य के समान कोई धर्म नहीं है व असत्य के समान घोर पातक नहीं है।

महाभारत के शान्ति पर्व के १६२ वें अध्याय में श्री भीष्मपितामह ने बड़े ऊंचे शब्दों में सत्य का व्याख्यान किया और अन्त में यहाँ तक कह दिया कि :—

नान्तो शब्दो गुणानां च
वक्तुं सत्यस्य पार्थिव।
अतः सत्यं प्रशंसन्ति
विप्रा सपितृदेवता।

इसी प्रकार महाभारत के अनुशासन पर्व में —

सत्येन सूर्यस्तपति सत्येनाग्निः प्रदीप्यते।
सत्येन मारुतो वान्ति सत्ये सर्व प्रतिष्ठितम् ॥
सत्येन देवा प्रीयन्ते पितरो ब्राह्मणास्तथा।
तस्मादाहु परो धर्मस्तस्मात्सत्यन्न लंघयेत् ॥
मुनयः सत्यनिरताः मुनयः सत्यविक्रमाः।
मुनयः सत्य शपथास्तस्मात्सत्यं विशिष्यते ॥

अर्थात् सत्य की महिमा का वर्णन कहाँ तक करें। सब ऋषि, मुनि, देवता स्थान स्थान पर सत्य की महिमा गाते हैं। सत्य से सूर्य तपता है, सत्य से वायु बहता है, अग्नि तपता है। सत्य में ही सब प्रतिष्ठित हैं। देव लोग, मुनि, ब्राह्मण सत्य से प्रसन्न होते हैं- अतः कभी भी सत्य का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। सब ऋषि मुनियों का बल सत्य है। इसी प्रकार के भावों से वेद-शास्त्र व पुराण भरे पड़े हैं।

श्री मनुजी महाराज ने अपनी मनुस्मृति के अध्याय आठ के ९६ वें श्लोक में निश्शङ्क सत्यवादी को बड़ा ऊँचा महत्व दिया है। यथा :—

यस्य विद्वान् हि वदतः, क्षेत्रज्ञो नाभिशंकते।
तस्मान्न देवा श्रेयांसो, लोके अन्यं पुरुषं विदुः।

(मनुस्मृति अध्याय ८ श्लोक ९६)

अर्थात् निश्शङ्क सत्यवादी का देवता लोग भी परम आदर करते हैं व उसको बड़ा मानते हैं। इसी प्रकार मनुस्मृति के चौथे अध्याय में प्रिय एवं सत्य बोलने को ही सनातन धर्म बतलाया है। यथा :—

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ,ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष ,धर्मः सनातनः॥

अर्थात् सत्य बोलो किन्तु प्रिय सत्य बोलो। कटु सत्य न बोलो। ऐसा न हो कि झूठ को सत्य सा बनाकर प्रिय बोल दो। सत्य ही प्रिय शब्दों में बोलो कटु सत्य नहीं यही सनातन धर्म है।

मनुष्य को मनसा वाचा कर्मणा सत्यवादी होना चाहिए। वाणी से शब्द कहे जा सकते हैं। भाव छुपाया जा सकता है। किन्तु यह सब असत्य है, सत्य नहीं। जो किसी सभा में बैठकर सत्य को जानते हुए भी नहीं कहते वे इस प्रकार असत्य ही बोलते हैं।

ये तु सभ्या सदा ज्ञात्वा तूष्णीं ध्यायन्नासते।
यथा प्राप्तं न ब्रुवते ते सर्वेऽनृतवादिनः॥

अर्थात् जो लोग सत्य कोभी समझते हुए सत्य नहीं कहते वे सब अनृतवादी ही हैं। अतः मनसा वाचा कर्मणा सत्य बोलने वाला ही सत्यवादी कहला सकता है।

सत्य वचन व वाक्सिद्धि

जो मनुष्य पूरी तरह मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य बोलते है व अपने संकल्पमात्र को भी असत्य नहीं होने देते, उनकी बुद्धि में ऋत वास कर जाता है। वे लोग जो सोचते हैं वह सत्य है। जो कहते हैं, वह सत्य है—उनकी कोई भी क्रिया असत्य नहीं हो सकती। योग-दर्शन में भगवान पतंजलि जी आदेश करते हैं :—

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

(साधनपाद सू० ३६)

इस सूत्र पर व्यास-भाष्य :—

धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः स्वर्गं प्राप्नुहीति।
प्राप्नोति स्वर्गं, अमोघाऽस्य वाग् भवति।

अर्थात् सत्यप्रतिष्ठयोगी जिसने अपने पूरे जीवन में कभी असत्य नहीं बोला, उसकी वाणी अव्यर्थ हो जाती है। उसको बिना प्रयत्न के वाक् सिद्धि रहती है। उसके मुख से निकला वचन कभी मिथ्या नहीं होता।

अखिल अण्ड ब्रह्माण्डनायक परम सत्य स्वरूप भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने महाभारत में द्रौपदी को सान्त्वना देते हुये प्रतिज्ञापूर्वक अपनी वाक्सिद्धि को कहा है —

चलेद्धि हिमवाञ्छैलो, मेदिनी शतधा भवेद् ।
द्यौः पतेच्च सनक्षत्रा, न मे मोघं वचो भवेद् ।।
सत्यं ते प्रतिजानामि कृष्णेवाष्पो निगृह्यताम् ।
हतमित्राञ्छ्रिया युक्तान्न चिराद् द्रक्ष्यसेपतीन् ।।

अर्थात् हिमालय अपने स्थान से विचलित हो जाय, पृथ्वी के टुकड़े हो जाँय और चाहे आकाश नक्षत्रों सहित गिर पड़े किन्तु मेरी वाणी कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती । द्रौपदी, आँसू पोंछो । बहुत थोड़े समय में तुम अपने पतियों को शत्रु रहित भूमण्डल पर राज्य-श्री युक्त देखोगी । सत्य स्वरूप भगवान ने —

सत्यं ते प्रतिजाने

कहकर उपर्युक्त शब्द द्रौपदी से कहे और हुआ भी वही ।

इसी प्रकार अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा को सान्त्वना देते हुये भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र प्रयोग द्वारा उसके मृत शिशु को जीवन-दान देने के समय बार-बार प्रतिज्ञापूर्वक अपने सत्य को साक्षी रखते हुये कहा कि —

न ब्रवीम्युत्तरे मिथ्या सत्यमेतद्भविष्यति ।
एष सञ्जीवयाम्येनं पश्यतां सर्वदेहिनाम ।।
नोक्त पूर्वं मया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन ।
न च युद्धात्परा वृत्तस्तथा संजीवतामयम् ।।
यथा मे दयितो धर्मो ब्राह्मणाश्च विशेषतः ।
अभिमन्योः सुतो जातो मृतो जीवत्वयन्तथा ।।
यथाहं नाभि जानामिविजयेन कदाचन ।।
विरोधन्तेन सत्येन मृतो जीवत्वयं शिशुः ।
यथा सत्यंच धर्मश्च मयि नित्य प्रतिष्ठतौ ।
तथा मृत शिशुरयं जीवतादभिमन्युज ।।
यथा कंसश्च केशी च धर्मेण निहितौ मया ।
तेन सत्येन बालो ऽयं पुनः संजीव तामयम् ।।

(महा० अश्वमेध पर्व ६८/१८/२३)

अर्थात् अयि उत्तरे ! मैं कभी भी असत्य नहीं बेलता हूं । अतः मेरी यह वाणी अवश्य ही सत्य होगी । सभी के देखते-देखते इस बालक को मैं अभी जिला देता हूं । मैंने आज तक मजाक में भी असत्य नहीं बोला है और न ही कभी युद्ध से पीछे हटा हूँ । उसी सत्य के फलस्वरूप यह बालक जी उठे ।

जिस प्रकार मुझे धर्म व विशेषतः ब्राह्मण प्यारे हैं तो उसी के फलस्वरूप यह मरा हुआ अभिमन्यु का बालक जी उठे ।

यदि मैंने आज तक कभी विरोध नहीं किया है तो इसी सत्य के फलस्वरूप यह मरा हुआ बालक जी उठे ।

जिस प्रकार सत्य व धर्म मुझ में हर समय प्रतिष्ठित है, उसी के फलस्वरूप यह मरा हुआ अभिमन्यु का बालक जी उठे । यदि मैंने कंस और केशी को धर्म से मारा है (न कि विरोध से) तो इसी सत्य के फलस्वरूप यह बालक जी उठे । इसी प्रकार

अखिल विश्वात्मा ने स्वयं भी बार-बार सत्य की शपथ दी व फलस्वरूप अभिमन्यु का वह बच्चा जीवित हो गया ।

हमारा अनुभव है जो लोग मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य का पालन करते हैं, बहुत थोड़े समय में ही उनकी वाणी में शक्ति आ जाती है व क्रिया-फल होने लगता है। पंजाब जिला करनाल में एक महात्मा एक जगह पर वास करते थे, वे अन्य अपनी सभी प्रकार की साधनाओं को करते हुए भी सत्य-पालन को अपना ध्येय बनाये थे । उनको यह साधना थी कि मनसा, वाचा कर्मणा जो भी करते थे वह सत्य ही करते थे और अत्यन्त मृदुभाषी थे । उनकी वर्षों की साधना के फलस्वरूप उनके जीवन में सत्य चमक उठा था । वह जो भी किसी को कह दिया करते थे, सत्यदेव भगवान की कृपा से वह पूरा होता था । उनके मन से किया हुआ कोई भी दृढ़ निश्चय विफल नहीं होता था । योगिराज भगवान पतंजलि जी के अनुसार उनकी वाणी क्रियाफल वाली हो गई थी । वे स्वयं इस बात को मानते थे कि मेरा जीवन सत्यदेव की आराधना से ही पूर्ण निर्भय व अन्य सभी विघ्न बाधाओं से रहित है । सत्य पूर्ण ब्रह्म है और उसकी आराधना स्वयं परब्रह्म की आराधना है व सब प्रकार से ओज और तेज को बढ़ाने वाली है । अतः कल्याण की अभिलाषा वाले व्यक्तियों को भगवान् पतंजलि जी के बतलाये हुये दूसरे यम सत्य को अपने जीवन में पूरी तरह अपनाने का प्रयत्न करना चाहिए । सत्य ही सब कल्याणों का मूल है ।

तीसरा यम अस्तेय है

अस्तेय धर्म की अहिंसा भाव की परिपुष्टि के लिए है । अर्थात् दूसरे के धन को चोरी से, किसी भी प्रकार से अपहरण न करना अस्तेय है ।

अन्यदीये तृणे रत्ने काञ्चने मौक्तिकेऽपि च।
मनसा विनिवृत्तिर्या तदस्तेयं विदुर्बुधाः ॥

अर्थात् किसी दूसरे के तृण, रत्न या मुक्ता आदि के चुराने में मन की वृत्ति न होने को अस्तेय कहा गया है । जिस व्यक्ति की अस्तेय में पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है उसको सर्व रत्न उपस्थित होने लगते हैं, किन्तु उसको उनकी कामना नहीं रहती ।

अस्तेय प्रतिष्ठायं सर्वरत्नोपस्थानम् ।
(यो० सू० २-३७)

अर्थात् अस्तेय की पूर्ण-प्रतिष्ठा हो जाने पर योगी को सब प्रकार से सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं । रत्नादि स्वयं ही प्राप्त होने लगते हैं ।

चौथा यम ब्रह्मचर्य है ।

ब्रह्मचर्य की महिमा से हमारे शास्त्र ओत-प्रोत हैं ; किन्तु आजकल के समाज में दुर्व्यसनों के अधिक मात्रा में बढ़ जाने से ब्रह्मचर्य जीवन लुप्तप्रायः ही है । वीर्य को हमारे शास्त्रों में ब्रह्मरूप से कथन किया गया है । जो वीर्य का धारण कर वह ब्रह्मचारी

कहलाता है। वीर्य हमारे शरीर में सातवीं धातु है उसका स्वरूप हमारे शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है ।

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकर स्मृतम् ।
गर्भ बीजं वपुः सारो जीवनाश्रय उत्तमः ।।

मनुष्य जब अन्न-सेवन करता है, उससे रस बनता है, रस के बाद रक्त.रक्त के बाद मांस,मांस के बाद मेद,मेद के बाद हड्डी (अस्थि) ,अस्थि के बाद मज्जा,मज्जा से वीर्य बनता है और वीर्य से ओज की उत्पत्ति होती है जो मनुष्य को देदीप्यमान रखता है । वीर्य सम्पूर्ण शरीर का आधार, जीवन का आशय और परम पुष्टिकर है। जिस प्रकार से दूध में घी और ईख के रस में गुड़ व्यापक रहता है , इसी प्रकार से वीर्य सारे शरीर में व्यापक रहता है। इसी से मन और बुद्धि का पूर्ण विकास होता है। यही सर्व सिद्धियों का मूल है । शिव-संहिता में भगवान् शंकर ने ऊंचे शब्दों में आज्ञा की है । यथा: —

मूलम्-मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणे ।
तस्मादति प्रयत्नेन कुरुते बिन्दुधारणम् ।।८८।।
मूलम् जायते म्रियते लोके बिन्दुना नात्र संशयः।
एतज्ज्ञात्वा सदा योगी बिन्दुधारण माचरेत्
।। ८९ ।।

मूलम-सिद्धे बिन्दौ महायत्ने
किं न सिध्यति भूतले ।
यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्येदृशो भवेत् ।।९०।।

अर्थात् बिन्दु के पतन से मरण व बिन्दु के धारण से जीवन होता है । प्राणी का जन्म और मरण बिन्दु से ही होता है। इसलिए योगी को प्रयत्न करके बिन्दुधारण करना चाहिए। यत्नपूर्वक बिन्दु जय कर लेने पर संसार में कोई भी ऐसा कार्य नहीं जो सिद्ध न किया जा सके। भगवान कहते हैं कि मेरा जो कुछ प्रभाव संसार में दिखलाई देता है वह केवल वीर्य-धारण से ही है । ब्रह्मचर्य के नियम बहुत बड़े-बड़े हैं । शास्त्र विधि से ब्रह्मचारियों की दो संज्ञाएं रखी गई हैं: —

(१) नैष्ठिक (२)उपकुर्वाण

(१) नैष्ठिक– नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह कहलाता है जो जीवन-पर्यन्त अखंड ब्रह्मचारी रहे । उदाहरणार्थ- भीष्म पितामह, शंकराचार्य, आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द हुये हैं।

(२) उपकुर्वाण — उपकुर्वाण ब्रह्मचारी वह कहलाता है जो समय की अवधि तक ब्रह्मचर्य आश्रम का पूर्ण रूप से पालन करके गृहस्थ में प्रवेश कर जाय। किन्तु किसी भी संज्ञा का कोई भी ब्रह्मचारी हो, ब्रह्मचर्य अवस्था में मैथुन त्याग परमावश्यक है ।

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्था सुसर्वदा ।
सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्यन्नते ।।

जो सब अवस्था में मन, वाणी कर्म से सर्वथा मैथुन का त्याग करता है, वही ब्रह्मचारी कहलाने का अधिकारी है ।

मनुस्मृति आदि में ब्रह्मचर्य आश्रम के लिए बहुत बड़े-बड़े नियम लिखे हैं । लेख के

बढ़जाने के भय से इन सबका यहाँ उदाहरण करना आवश्यक नहीं समझा गया ? किन्तु इस विषय में सभी शास्त्रों का एक मत है कि मन से भी ब्रह्मचारी को विषयों का चिन्तन नहीं करना चाहिए। क्योंकि :—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद् भवति सम्मोहः संमोहात्स्मृति-विभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥
(गीता २/६२/६३)

अर्थात् विषयों का चिन्तन करने से मनुष्य को संग, संग से काम, काम से क्रोध और क्रोध से मोह, मोह से स्मृतिभ्रंश और स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश तथा बुद्धिनाश से सर्वनाश हो जाता है भगवान श्री कृष्ण की आज्ञानुसार जो मनुष्य चिन्तनमात्र में भी विषयों का स्मरण नहीं करता वही ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन कर सकताहै, अन्यथा नहीं। जिसने इस ब्रह्मचर्य रूप महाशक्ति को धारण कर लिया है, उसने संसार को जीत लिया है। ब्रह्मचारी में सिद्धों की तरह शक्तिपात करने की योग्यता आ जाती है। भगवान पतञ्जलि ने ब्रह्मचर्य धारण का फल इस सूत्र में बतलाया :—

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।
(योगसूत्र २-३८१)

ब्रह्मचर्य की पूर्ण प्रतिष्ठा में पूर्ण सामर्थ्य लाभ होता है। इसी सूत्र का भाष्य करते हुये भगवान व्यासदेव जी कहते हैं :—

यस्य लाभाद् प्रतिघानगुणनुत्कर्षोपतिः सिद्धस्त्वविनयेषु ज्ञानमाधातु समर्थो भवतीति ।

अर्थात् इस ब्रह्मचर्य के धारण करने से अनुपम गुण बढ़ते हैं और पूर्ण ब्रह्मचर्य सिद्ध हो जाने पर ब्रह्मचारी अपने शिष्यों में शक्ति संचार करके ज्ञान—धारणा करा सकता है।

पाँचवां यम अपरिग्रह है

परिग्रह का न होना अपरिग्रह कहलाता है। संसार के सब विषयों में और अपने शरीर में स्वत्व बुद्धि का नाश हो जाने पर प्राणी शरीर धर्मों से अपने आपको पृथक् देखता है और उसको अपने पूर्व संस्कार स्मरण होने लगते हैं। कौन था ? क्या था ? कैसा था ? क्यों था ? आगे क्या हूँगा ? इस प्रकार की प्रवृत्तियां मन में घूमने लगती हैं। ऐसी भावना से शरीर—धर्म में भी उपरति हो जाने के बाद उसको जन्म-जन्मांतरो की कथाओं का स्मरण होने लगता है। भगवान् पतञ्जलिजी लिखते हैं :—

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथान्तासंबोधः ।
(योगसूत्र २-३९)

अर्थात् पूर्णतः अपरिग्रह की स्थिरता हो जाने के बाद जन्म-जन्मान्तरों की कथाओं का बोध हो जाता है। यह सब यमों की सिद्धियाँ हैं।

"योग सिद्धि द्वारा परकाय प्रवेश"

(श्री विजयकुमार एम० ए०)

भगवान पतञ्जलि जी के अनुसार सकाम कर्म रूपी धर्माधर्म बन्धनों के कारण को शिथिल करने से एवं इन्द्रियों के द्वारा विषयों में चित्त को प्रवाहित करने वाली चित्तवहा नाड़ी के स्वरूप एवं चित्त के परिभ्रमण-मार्ग को ज्ञात कर लेने से साधक के चित्त (सूक्ष्म शरीर) का दूसरे जीवित या मृत व्यक्ति के शरीर में प्रवेश हो जाता है।

"बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः"।

इसी प्रकार आदि शंकराचार्य के मतानुसार **"यथाभिध्यानाद्वा"** अर्थात् ध्यान के परम शक्ति सिद्धि से भी परकाया प्रवेश सिद्धि हो जाता है। "योग वाशिष्ठ" के अनुसार रेचक प्राणायाम के अभ्यासरूप युक्ति से मुख द्वारा १२-१२ अंगुल परिमित देश में प्राण को चिरकाल तक स्थिर रखने पर योगी अन्य शरीर में प्रवेश करने वाला हो जाता है। अनुभव के आधार पर अन्य कभी साधन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा परकाय-प्रवेश सिद्धि के लिये बताये गये हैं परन्तु अन्य कष्ट साध्य हैं। तथा बिना सत्व को जागृत (धारणा, ध्यान, समाधि के द्वारा) किये इस सिद्धि के लालच में पड़ना मृत्यु को निमन्त्रण देना ही होगा। क्योंकि अन्य क्रियाओं में त्राटक की प्रधानता है। जो कि "हठयोग" का उत्कृष्ट साधन है। खेचरी मुद्रा द्वारा भी परकाय-प्रवेश हो जाता है। इसमें प्रातः वेला में आकाश तत्व के उदय होने की स्थिति में १२ घण्टे तक आकाश तत्व में संयम करना पड़ता है।

हमारे पुराणों एवं धार्मिक ग्रन्थों में परकाया प्रवेश के बहुतायत से प्रमाण सहित उदाहरण मिलते हैं। भगवान् शंकराचार्य का सुधन्वा या अमरुक के मृत शरीर में प्रवेश करना, चूडाला द्वारा पति के समाधि तोड़ने हेतु उनके शरीर में प्रवेश करना, राजा पद्म के मृत शरीर में राजा विदुरथ का प्रवेश करना, तथा अन्य कई उदाहरण नाथ सम्प्रदाय के योगियों के जीवन में घटित हुए प्रमाण रूप सामानय रूप से मिलते हैं। यहाँ सविस्तार कुछ घटनायें जो ऐतिहासित एवं सत्य हैं उन्हें सर्व साधारण को योग शक्ति की महत्ता जान लेने के लिये लिखना उचित होगा। हमारे शरीर तीन रूप रखते हैं। प्रथम स्थूल जिसका हम प्रत्यक्ष अवलोकन करते हैं। द्वितीय सूक्ष्म शरीर। तृतीय कारण शरीर। परकाया-प्रवेश के लिये सूक्ष्म शरीर जो सर्व साधारण को दृष्टिगोचर नहीं होता इसका ही एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश

कराया जाता है। जीवात्मा इसी सूक्ष्म शरीर से प्रत्यक्ष दीखने वाले स्थूल शरीर को त्यागता है एवं पुनः घट में प्रवेश करके पुनर्जन्म ग्रहण किया है। ऐसा शास्त्रों का मत है।

जगत गुरु आदि शंकराचार्य का परकाय प्रवेश

बौद्ध धर्म के अन्तिम चरण में कुछ भ्रामक प्रथायें एवं विचारगत रूढ़िवादिता फैल चुकी थी। जिसके कुप्रभाव से सनातन वैदिक धर्म क्षीण हो गया था। ऐसे समय में अद्वैतवाद के समर्थक आदि शंकराचार्य ने अपनी अल्प उम्र में ही अद्भुत शक्ति एवं विद्वत्ता द्वारा विरोधी मत वाले विद्वानो को शास्त्रार्थ में परास्त करके समस्त भारत भूमि में जगह जगह अद्वैत सिद्धान्त एवं वैदिक धर्म की विजय पताका गाड़ते लहराते वाराणसी तक आ पहुँचे थे। अपने सिद्धान्तों के समर्थन में जब काशी में विजय प्राप्त हो गयी तो वे अपने विद्वान शिष्यों की भारी भीड़ के साथ मिथिला की ओर बढ़े। उन दिनों मिथिल में प्रकाण्ड विद्वान् श्री मण्डन मिश्र मौजूद थे। यहाँ डटकर भगवान् श्री शंकराचार्य जी से एवं श्री मण्डलमिश्र से धर्म के भिन्न भिन्न पहलुओं पर शास्त्रार्थ हुआ। मध्यस्तता श्री मण्डनमिश्र की विदुषी धर्म पत्नी भारती कर रही थीं। परन्तु अन्त में श्री मण्डनमिश्र ने आचार्य से शास्त्रार्थ में हार मान ली। इसी समय भारती ने नम्र एवं न्यायोचित शब्दों में भगवान् शंकराचार्य से कहा कि आचार्य अभी आप पूर्ण विजेता नहीं हुये हैं। जब तक मुझे भी आप शास्त्रार्थ में पराजित नहीं कर देंगे यह विजय अपूर्ण समझी जायेगी। स्त्री (पत्नी) पति की अर्द्धाङ्गिनी की जाती है। अतः अब आप मुझसे शास्त्रार्थ करें।

विद्वानों के विशेष समारोह में दूसरे दिन से ही भारती और आचार्य शंकर का शास्त्रार्थ शुरू हो गया। परन्तु कुछ ही दिनों के पश्चात् भारती अपना पलड़ा हलका महसूस करने लगी। उसी समय भारती के मन में एक विचार कौंधा। आचार्य शंकर बाल ब्रह्मचारी तथा संन्यासी हैं अतएव इनको "कामकला" का अवश्य ही ज्ञान नहीं होगा। बात भी यथार्थ थी, आठ वर्ष में ही पूर्ण वेदों का ज्ञान प्राप्त कर परम वैराग्य को प्राप्त भगवान "शंकराचार्य काम शास्त्र' से बिल्कुल ही अनभिज्ञ थे। जैसे ही भारतीय ने 'कामकला' पर प्रश्न करने प्रारम्भ किये आचार्य शंकर ने मौन धारण कर लिया। सारा विद्वत समाज भारती की चतुराई से स्तब्ध रह गया। परन्तु दृढ़ संकल्प से समाज की कुरीतियों एवं पाखण्डों का विनाश करने वाले आचार्य शंकर ने भारती से इस विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिये कुछ समय देने के लिये प्रार्थना की, जिसको भारती ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

भगवान् अपने कुछ अधिकारी शिष्यों को

साथ लेकर एक वनस्थली में पहुंचे जहां दिव्य दृष्टि द्वारा एक राजा का प्राणान्त होते देखा। सुन्दर नवयुवक राजा के देहावसान से रानियाँ तथा स्वजन सभी क्रन्दन करते हुये महान दुःख को प्राप्त हो रहे थे। ऐसा जानकर तुरन्त आचार्य शंकर ने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि अभी मेरा यह पार्थिव शरीर मेरी इच्छा से निर्जीव होकर मृत शरीर सा हो जायेगा परन्तु तुम लोग इसकी रक्षा करना। अज्ञानता वश दाह संस्कार मत कर देना। कुछ समय उपरान्त मैं पुनः अपनी जीवात्मा को इसी शरीर में प्रवेश करा लूंगा। ऐसा कहकर आचार्य क्षण-मात्र में अपने जीवात्मा को संन्यासी शरीर से निकालकर योग द्वारा उस मृत राजा के शव में प्रवेश करा दिया। देखते देखते मृत राजा जीवित हो उठे। सम्पूर्ण राजमहल हर्ष से भर गया। रानियों को अपना सुहाग मिल गया।

अब आचार्य शंकर राजा के शरीर में प्रवेश कर राजोचित व्यवहार करने लगे तथा साथ ही "कामकला" का ज्ञान उन रानियों से प्राप्त कर रहे थे। परन्तु कहाँ एक राजा और कहाँ पूर्ण ब्रह्म निष्ठ संन्यासी की जीवात्मा जिसके सारे संस्कार नष्ट हो चुके हों। व्यवहार में कुछ न कुछ अन्तर तो आना आवश्यक ही था। परन्तु घट वही होने से किसी को सन्देह नहीं हो पाता था कि इस राजा के शरीर में अब किसी उज्जवल जीवात्मा का वास हो चुका है। पूर्ववत् राजकाज आनन्दपूर्वक चलता रहा। परन्तु एक दिन सबसे छोटी रानी का जो तंत्र विद्या जानने वाली थी, उसे राजा के उपर सन्देह होगया तथा उसने अपनी तंत्र-साधना के बल से राजा के शरीर में आये हुये उज्जवल जीवात्मा को पहचान लिया। इतना ही नहीं उसने आचार्य के संन्यासी के पार्थिव शरीर जो उस समय शिष्यों द्वारा रक्षित था का भी ज्ञान प्राप्त किया तथा उसी समय कुछ कापालिकों एवं सैनिकों को इस आशय से भेजा कि आचार्य के संन्यासी निर्जीव शरीर को जबरदस्ती नष्ट करदो जिससे आचार्य की आत्मा राजा के शरीर में ही सर्वदा के लिये रह जाय। परन्तु अन्तः दृष्टि वाले आचार्य ने जो राजा के शरीर में थे तुरन्त ही रानी के विचारों को जानकर अपनी जीवात्मा को राजा के शरीर से योग द्वारा निकालकर अपने पहले छोड़े हुये शरीर में प्रवेश करा दिया। इधर पुनः राजा जो जीवित थे शव रूप हो गये और उधर संन्यासी-शरीर आचार्य शंकर के रूप में जीवित हो उठा।

इस प्रकार भगवान शंकराचार्य ने अपनी जीवात्मा उस मृत राजा के शव में प्रवेश कराकर कुछ काल तक निष्काम भाव से राजोचित व्यवहार करते हुये "कामकला" का ज्ञान अर्जित किया तथा अबकी बार लौट कर जब भारती से शास्त्रार्थ हुआ तो अन्त-

गत्वा आचार्य शंकर विजयी हुये। भारती अपने विद्वान पति श्री मण्डनमित्र के साथ आचार्य से दीक्षा प्राप्त कर शिष्य बन गयी।

एक वृद्ध योगी का परकाय प्रवेश

एक फौजी आफिसर द्वारा परकाया प्रवेश की घटना जो उसको आँखों देखी हुयी थी। इस प्रकार का वर्णन कुछ दिनों पूर्व हमें किसी पत्रिका या 'कल्याण' के किसी अङ्क में पढ़ने को मिला था, जिसका वर्णन मैं यहाँ कर रहा हू।

घटना आसाम-बर्मा के घने सरहदी जंगली इलाके की है। कोई फौजी बड़ा अफसर जिसको भारतीय योग विद्या के चमत्कारों को देखने की बड़ी जिज्ञासा थी परन्तु कभी ऐसा अवसर प्राप्त नहीं हुआ था, एक दिन भयंकर जंगल में अपने कुछ वरिष्ठ अधिकारियो तथा सैनिकों के साथ सरहदीय क्षेत्र का मुआयना कर रहा था। जिस स्थान पर वे सभी लोग ठहरे हुये थे उसी के पास एक पहाड़ी नदी बह रही थी। उस अधिकारी ने यकायक नदी में सवस्त्र एक शव बहता हुआ देखा। उत्सुकतावश दुर्बीन द्वारा उस बहती हुयी शव समान वस्तु का निरीक्षण करने लगा। उसने देखा एक नवयुवक का शव बहता हुआ किनारे से कुछ दूर है तथा एक वृद्ध कंकाल मात्र अथक परिश्रम करते हुये उस शव को किनारे पर लाना चाह रहा है परन्तु बार-बार असफल हो जा रहा है। क्योंकि पहाड़ी नदी होने के कारण जल का प्रवाह अत्यधिक था और साथ ही अति दुर्बल एवं कमजोर वह वृद्ध पुरुष था। अफसर ने इस दृश्य की ओर अन्य साथियों का भी ध्यान मोड़ा जिससे साथ के कई लोग अपने-अपने दुर्बीनों द्वारा जिज्ञासा के साथ उस वृद्ध के शव पर नियन्त्रण प्राप्त करना देखते रहे। अन्त में वृद्ध ने अपने प्रयत्नों द्वारा सफलता प्राप्त कर ली। उसने शव को तट पर लाकर कुछ क्षण विश्राम किया तथा बाद में शव को लेकर निकटवर्ती एक विशाल वृक्ष की ओट में कुछ देर न मालूम क्या करता रहा। उन आफिसरों के आश्चर्य एवं कौतूहल का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि वृक्ष की ओट से वह मृत युवक जीवित व्यक्ति की तरह चलकर जंगल की ओर जा रहा है। जिज्ञासा अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। उस फौजी आफिसर ने अपने कुछ साथियों को साथ लेकर तुरन्त ही उस नवयुवक का पीछा किया।

निरन्तर कुछ समय तक पीछा करने पर पास जाकर उस आफिसर ने उस नवयुवक को रुकने का हुक्म दिया तथा साथ ही पूछा तुम कौन हो ? हम सभी ने तुम्हें कुछ समय पहले नदी में शव की तरह बहते हुये देखा है और अब तुम जिन्दा हो। यह सब क्या रहस्य है ? वह वृद्ध जो तुमको निकाल रहा था कहाँ गया ? उस नवयुवक ने उन आफिसरों

से कहा "मैं ही वह बूढ़ा आदमी हूँ।" यह उत्तर सुनकर सभी आश्चर्य चकित हो गये। इसके उपरान्त बहुत विनम्रता से आग्रह करके पूछने पर उस नवयुवक ने बताया "कि मैं योगी हूँ। जिस समय मेरा शरीर समय के प्रवाह में वृद्ध हो जाता है और मैं नैतिक कर्मों के करने में उस शरीर से असमर्थ हो जाता हूँ, तब मैं किसी मरे हुये स्वस्थ नवयुवक शव को खोज करके अपनी जीवात्मा उस शरीर में प्रवेश करा देता हूँ। अभी जो आप लोग वृद्ध पुरुष की बात पूछ रहे थे वह मैं ही हूँ। शरीर उस पेड़ के पीछे पड़ा है। वास्तव में जब उस पेड़ के पास जाकर आफिसरों ने देखा तो एक वृद्ध की लाश वहाँ पड़ी थी। ये सारी की सारी बातें उन अधिकारियों के लिये आश्चर्यजनक एवं चमत्कारिक थीं यही जगत आत्मा अखिल ब्रह्माण्ड नायक भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने गीता में कहा है "कि यह पार्थिव शरीर आत्मा नहीं है। हे अर्जुन आत्मा तो शरीर को उसी प्रकार से समयान्तर में छोड़ देता है जैसे हम तुम अपने पुराने जीर्ण-शीर्ण कपड़ों को उतारकर नया धारण करते हैं। जीवात्मा भी उसी प्रकार नये शरीर को धारण कर लेती है" हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि अपूर्व योग-विद्या का अनुसरण कर हजारों बार परकाया प्रवेश करते रहे हैं।

गोविन्दं भज मूढमते !

वयसि गते कः कामविकारः
शुष्के नीरे कः कासारः ।
क्षीणे वित्ते कः परिवारः
ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं
गोविन्दं भज मूढमते !

अवस्था बीत जाने पर अर्थात् वृद्धावस्था आने पर काम विकार ही क्या ? अर्थात् व्यर्थ ही है। पानी सूख जाने पर तालाब, पोखरा आदि का क्या महत्त्व ? कुछ भी नहीं। जब पास में धन नहीं है तो परिवार कौन ? कोई नहीं। पास में धन रहे तो सभी घेरे रहते हैं। इसी तरह तत्त्वज्ञान हो जाने पर संसार क्या ? कुछ भी नहीं। अज्ञान ही संसार की जड़ है। अतः हे मन्दमते ! ज्ञान प्राप्त करने के लिए तू गोविन्द का भजन कर ॥

— आचार्य शंकर

तुलसी दोहावली

तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि ।
तीय तनय सेवक सखा, मन के कंटक चारि ॥

स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र जब अपनी रुचिके अनुसार कार्य करने में ही सन्तुष्ट होते हैं (अपनी रुचि के प्रतिकूल किसी की बात नहीं सुनते) और मनमानी करके आप ही काम बिगाड़ लेते हैं तथा फिर रूठ भी जाते हैं, तब ये चारों मनको काँटेके समान चुभने लगते हैं ॥

दीरघ रोगी दारिदी, कटुबच लोलुप लोग ।
तुलसी प्रान समानतउ; होहिं निरादर जोग ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि प्राण के समान प्यार होने पर भी बहुत दिनों के रोगी, दरिद्र कटु वचन बोलने वाले और लालची—ये चारों निरादर के योग्य हो जाते हैं ॥

तुलसी स्वारथ सामुहो, परमारथ तन पीठि ।
अंध कहें दुख पाइहै, डिठिआरो केहि डीठि ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो मनुष्य स्वार्थ के तो (सम्मुख) शरण हो रहा है और परमार्थ की ओर जिसने पीठ कर रक्खी है अर्थात् भगवान् से विमुख होकर जो केवल विषयो में रत है वह अन्धा कहने पर तो मन में दुःख पायेगा, परन्तु किस आँख–को लेकर उसे आँखवाला कहा जाय ? (अर्थात् आँख हुए बिना उसे आँखवाला कहें भी कैसे ? हृदय में विवेक रूपी असली आँख होती तो वह भगवान् के सम्मुख होने में ही अपना कल्याण देखता और भयङ्कर विषयों का मोह छोड़ देता) ॥

रीझि अपने बूझि पर, खीझि विचार बिहीन ।
ते उपदेश न मानहीं, मोह महोदधि मीन ॥

अपनी ही समझ (बुद्धि) पर जिनकी प्रीति है । अपनी ही समझको जो सबसे उत्तम मानते हैं और जिनका रोष नासमझी को लिये हुए होता है; वे मोह के महान् समुद्र में मछली बने हुए लोग किसी का उपदेश नहीं मानते ॥

आध्यात्मिक-समारोह—

योग साधन आश्रम ऋषिकेश का वार्षिकोत्सव

(हमारे विशेष प्रतिनिधि द्वारा)

ऋषियों और मुनियों की तपोभूमि ऋषिकेश में जो हिमालय की तलहटी और गंगा के किनारे बसा हुआ एक प्रख्यात तीर्थ स्थल है गत २४, २५ और २६ मई ६९ को योग-योगेश्वर प्रभुवर श्री रामलाल जी द्वारा संस्थापित 'योग साधन आश्रम' का वार्षिकोत्सव जिसे दूसरे शब्दों में आध्यात्मिक समारोह भी कहकर पुकार सकते है—अनन्त श्री सद्‌गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की अध्यक्षता में गतवर्षों की भांति ही अतीव धूम-धाम, उल्लास और उत्साह के वातावरण में सम्पन्न हुआ। इस समारोह को सफलता पूर्वक सम्पन्न कराने के लिए श्री सद्‌गुरुदेवजी नियत तिथि से एक सप्ताह पहले ही अपने शिष्यों और भक्तों के साथ आ पहुँचे थे। इस योग-परक आध्यात्मिक सम्मेलन में भाग लेने के लिए पंजाब, दिल्ली, हरियाणा, काश्मीर, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान आदि दूरस्थ प्रदेशों के लगभग एक हजार से अधिक प्रतिनिधि–साधक और दर्शक आये हुए थे। प्रत्येक दिन समारोह का आरम्भ प्रभु प्रार्थना के साथ आरम्भ होता था। योग-दर्शन का सैद्धान्तिक विवेचन और योगित क्रियाओं पर श्री सद्‌गुरुदेव जी के भाषण इस सम्मेलन की मुख्य विशेषता थे। काश्मीर राज्य के सुप्रसिद्ध सन्त और नैष्ठिक ब्रह्मचारी हरिभक्त चैतन्य ने अपने साधनामय जीवन के उपयोगी और रोचक अनुभव बताते हुए श्रोताओं के मनों पर अपने त्याग और तपस्यामय जीवन की गहरी छाप डालकर उन्हें साधनामय जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित किया। प्रतिदिन सन्ध्या समय प्रभुजी की सामूहिक आरती और कीर्तन का दृश्य बड़ा ही हृदयग्राही, सात्विकता पूर्ण तथा प्रभावोत्पादक होता था। सैकड़ों कण्ठों से एक साथ निकली आरती की ध्वनि सन्ध्याकालीन पवित्र वातावरण को और भी अधिक पावन बना देती थी। इस सामूहिक आरती और कीर्तन गान में जो मिठास श्रोताओं को मिलता था वह वर्णन का नहीं अनुभव का ही विषय है।

सम्मेलन में कुछ अन्य विद्वानों के भी उल्लेखनीय भाषण हुए।

२६ जून को गंगा दशहरा के दिन—इस आध्यात्मिक समारोह का अन्तिम दिन था। इस दिन दोपहर को आश्रम की ओर से एक विशाल भण्डारा यानी ब्रह्म भोज का आयोजन रहता था। इस वर्ष भी ब्रह्म भोज का

यह आयोजन पूर्ववत् ही था जो बड़ी ही सात्विकता और सादगी के साथ सम्पन्न हुआ।

इसी दिन सायंकाल को ऋषिकेश के सभी प्रमुख बाजारों और मुख्य-मुख्य सड़कों से होकर एक विशाल शोभा यात्रा आश्रम से आरम्भ होकर आश्रम पर ही लौटकर समाप्त होती है। इस शोभा यात्रा में एक सुसज्जित वाहन पर प्रभुजी का कलापूर्ण तेजस्वी तैल चित्र रहता है जिसके पार्श्व में योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज स्वयं विराजते हैं। बाजार में जगह-जगह श्री प्रभु जी और सद्गुरुदेव जी की आरती व पूजन होता चलता था तथा इनके सामने हरद्वार की एक प्रसिद्ध संगीत मण्डली के उत्साही युवक भक्ति भाव पूर्ण भजन गाते चलते थे।

इस शोभा यात्रा में भगवान शंकर तथा योग-योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण चन्द के जीवन से सम्बन्धित कुछ और भी मनोहर झाकियाँ थीं जिनमें बालकों के रूप सुन्दर और दर्शनीय थे। इस तरह २४ से २६ मई तक ऋषिकेश की पावन भूमि पर योग साधन आश्रम का यह उल्लेखनीय उत्सव सम्पन्न हुआ।

श्री सद्गुरुदेव से उत्सव की समाप्ति पर आये हुए भाई-बहन जब उनकी आज्ञा प्राप्त करके अपने स्थानों को लौटते हैं तब विदाई का जो भाव—भीना दृश्य उपस्थित होता है वह भी-गिरा अनयन नयन बिनु बानी—के समान वर्णन से बाहर होता है। मालूम ऐसा होता है मानों गुरुदेव और शिष्यों के बीच में संयोग, वियोग की घड़ियाँ आने ही नहीं देना चाहता है लेकिन वियोग—बेला बरबस आती है और विदा होने वाले साधक तथा बच्चों और बच्चियों की आँखों में छलक कर कहती है आखिर क्यों नहीं चाहते मुझे—हटो मेरा भी तो गुरुदेव के चरणों में उतना ही स्थान है जितना संयोग का।

इन्हीं दिनों ऋषिकेश में गंगा दशहरा के के कारण यात्रियों की भारी भीड़ रहती है इन यात्रियों में से भी बहु संख्यक यात्री भी इन तीन दिनों में इस उत्सव में हुए धार्मिक तथा आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ लेने के लिए शामिल होते हैं। अनेक साधक भाई-बहन जो इस उत्सव में शामिल होने पहुँचते हैं ऋषिकेश के पवित्र वातावरण तथा गुरुदेव के दैनिक सत्संग का लाभ उठाने के लिए योग साधन आश्रम में ठहरे रहते हैं। श्री सद्गुरुदेव जी की हार्दिक अभिलाषा रहती है कि ऋषिकेश का योग साधन आश्रम योग सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार के क्रियात्मक केन्द्र के रूप में कायम रहे।

साधना का केन्द्र शरीर नहीं, आत्मा है !

(उपाध्याय श्री अमरमुनि जी)

जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ अपना सब कुछ होम कर देने वाले महान् साधकों को भी होती हैं। भूख होती है, प्यास होती है। इन्हें कब तक दबाया सकता है ? अन्न और जल मानस-जीवन की आधार शिला है, इनकी प्राप्ति के लिए यथावसर उचित प्रयत्न करना ही होता है। इस सम्बन्ध में 'नहीं' का कुछ अर्थ नहीं है। साधना का अर्थ जीवन को नकारना, मरण को स्वीकारना नहीं है। साधना का अर्थ है जीवन और मरण दोनों को सँवारना, सुधारना और ज्योतिर्मय बनाना। यह ठीक है कि 'स्व' के प्रति समर्पित आत्मा शरीर के प्रति उपेक्षित हो जाती है, पर इसका यह अभिप्राय तो नहीं कि दण्ड देना है, जान बूझकर व्यर्थ ही उसे तोड़ना है, मिटाना है। साधना का ध्येय शरीर को मिटाना नहीं है, अपितु उसे नियंत्रित करना है। शरीर साधना का शत्रु नहीं है, जो उसे मारा जाए। शरीर तो साधना का सहयोगी है, सहायक है। उसके साथ यह विवेकहीन उत्पीड़न का व्यवहार साधना नहीं, साधना की विडम्बना है। साधना का केन्द्र शरीर नहीं, आत्मा है। शरीर को साधो, आत्मा को निर्मल बनाओ, बस साधना हो गई।

यह ठीक है कि साधक शरीर का गुलाम नहीं होता, जो दिन-रात उसी की सुख-सुविधा में बेभान बना रहे, अन्य किसी महत्त्वपूर्ण काम का न रहे। जब देखो तब शरीर की चिन्ता, शरीर की सुख-सुविधाओं की उधेड़बुन। यह वृत्ति साधना के तेज को गला देती है। अतः साधक शरीर को साधता है, साधना के लिए उसे सक्षम बनाता है। सक्षमता यही कि यदि कभी मर्यादा के अनुकूल समय पर कुछ न मिले, तो शान के साथ भूखा रह सके, प्यासा रह सके। इधर भूख लगी कि उधर साधकजी फूल से मुरझा गए। इधर प्यास लगी कि उधर 'हाय मरा' का शोर मचाने लगे। साधना के पथ पर ऐसा नहीं होना चाहिए। संकट की घड़ियों में भी अनाकुलता बनाये रखना, विचलित न होना साधना का उद्देश्य है।

-

उलटवाँसी शैली में दार्शनिक व्यंजना

(श्री रमेशचन्द्र मिश्र)

[पूर्व प्रकाशित से आगे]

उलटवाँसी पदों में प्रथम गोरख नाथ के पद में 'निरमल जल' माया या अव्यक्त शक्ति के आदि स्वरूप से है, जो सत्व प्रधान है। उस निर्मल जल या आद्याशक्ति में सर्पिणी रूप अविद्या शक्ति का आभास होने लगता है जो संशय के माध्यम से सृष्टि-क्रम अथवा दृश्य जगत् को चलाता है। 'समुद समाना बूँद में' से आत्मा में परमात्मा का दर्शन अथवा सीमित में असीमित की अनुभूति की व्यंजना है। कामधेनु अथवा नारी का प्रतीकत्व भी माया के लिए है।

मायाख्या कामधेनोर्वत्सो जीवेश्वरावुभौ ।

अर्थात् माया रूप कामधेनु के जीव और ईश्वर दो बछड़े है। पलटू साहब के कुंडलिया पद में 'जोरू' का प्रतीकत्व जीवात्मा के लिए हो रहा है। विचार काल में जीवात्मा भासमान संसार का 'खसम' का तिरोधान कर देती है। द्वित्व की स्थिति समाप्त होने पर उसे आनन्द की अनुभूति होती है। इस प्रकार उक्त कथनों में वेदान्त दर्शन की व्यंजना अपने विशिष्ट रूप में हुई है। जगत् की व्यावहारिक सत्यता को समझाने के लिए ही वेदान्त ने माया के सिद्धान्त को स्वीकार किया। है किन्तु अद्वैत की सिद्धि तभी हो सकती है, जब कि इसे माया के द्वित्व से बचाया जासके। इसी लिए वेदान्त में तत्त्वतः माया के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जाता। इस बात को उलटवाँसी शैली में कबीर ने इस प्रकार कहा है—कि माया कृत यह संसार अप्रसूतिवती गौ का दुग्ध, शशक शृंग तथा बंध्या के पुत्र का रमण है। देखिये:—

'आंगणि बेलि अकासि फल,
अणब्यावर का दूध ।
ससा सींग की धुनहड़ी,
रमै बांझ का पूत ॥'

(कबीर ग्रन्थावली,)

उलटवाँसी पदों में शांकर अद्वैत को ही प्रधानतः प्रश्रय मिला है, रामानुज के विशिष्टाद्वैत को नहीं। शांकर मत में ब्रह्म ही अद्वितीय तत्व है, इसके अतिरिक्त दृश्यमान् प्रपंच। सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद परक ब्रह्म शून्य है। उस का निर्विशेषत्व आदि निर्गुणत्व सिद्ध है। रामानुज मत में चित् और अचित रूप शरीर भी विशिष्ट ब्रह्म है, अतः सत्य है। चित् से युक्त जीव और अचित से युक्त जगत् से भिन्न कुछ नहीं है। वह ब्रह्म सजातीय और विजातीय भेद से शून्य है, किन्तु स्वगत भेद से शून्य नहीं है।

वह सविशेष ब्रह्म स्वभावेन कल्याणकारी गुणों से युक्त है । इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि उलटवाँसियों में वर्णित शून्य शांकर अद्वैत से प्रभावित है, यद्यपि योग-दर्शन प्रतिपादित 'निर्विकल्पक समाधि' का शून्यत्व भी उलटवाँसी पदों में मुखर रहता है । किन्तु जहाँ विशिष्टाद्वैत प्रतिपादित सविशेष 'ब्रह्म' के कल्याणकारी स्वभाव का वर्णन मिलता है, वहाँ विशिष्टाद्वैती प्रभाव की व्यञ्जना कही जासकती है । राधा स्वामी मत के प्रवर्तक संत शिवदयाल जी की एक 'उलटी बात' यह प्रस्तुत है—

'सुन री सखी इक मर्म जनाऊँ ।
नई बात अब तोहि सुनाऊँ ॥
दिन बिच नाचत चंद दिखाऊँ ।
रैन उदय दिनकर दरसाऊँ ॥
अग्नि पूतरी जल से सिचाऊँ ।
जल की रंभा अग्नि नचाऊँ ॥
गगन माहिं पृथ्वी चलवाऊँ ।
पृथ्वी मध्य गगन लखवाऊँ ॥
व्योम चलाय पवन थमवाऊँ ।
सिंह मार और स्यार जिवाऊँ ॥
दुर्बल से बलवान गिराऊँ ।
त्रिकुटी चढ़ यह धूम मचाऊँ ॥
कागन भुंड हंस करवाऊँ ।
लूकन को अब सूर दिखाऊँ ॥
उलटी बात सभी कह गाऊँ ।
ऐसे समरथ राधास्वामी पाऊँ ॥'

इस उदाहरण में 'समरथ राधास्वामी' में ईश्वरत्व की कल्पना शांकर मत से भिन्न है । इसी विशिष्ट के अनुग्रह से काक वत् जीव, अभ्यास और वैराग्य के नैरन्तर्य से हंस स्वभाव वाला होकर जीवन्मुक्त हो जाता है । माया का तिरोधान हो जाता है । किन्तु यह तिरोभाव प्रबल और स्थूल माया का ही होता है, शुद्ध और सूक्ष्म का नहीं । क्योंकि राधास्वामी की शक्ति उसे इतना सूक्ष्म और शुद्ध बना देती है, कि वह भी सत्य लोक में निवास कर सके । वही सत्य लोक राधास्वामी का शुद्ध रूप है, जहाँ 'सुरत' के माध्यम से सविशेष ब्रह्म निवास करता है । विशिष्टाद्वैत में जगत् को परमात्मा का व्यक्त रूप माना जाता है ।

सांख्य दर्शन और योग-दर्शन की तत्व-मीमांसा प्रायः समान है । योग में भी सांख्य के पच्चीस तत्व अभीष्ट रहते हैं, किन्तु ईश्वरत्व की कल्पना उस में अधिक है, इसलिए योग को 'सेश्वर सांख्य' भी कहते हैं । उलटवाँसी-पदों में वर्णित संख्याओं का उल्लेख रहने के कारण सांख्य की व्यंजना होती है, किन्तु वह संख्या योग प्रतिपादित ही है । उलटवाँसियों में सांख्य की गणना का का प्रयोग तो हुआ है, पुरुष और प्रकृति की नित्यता और अनन्तता को भी स्वीकारा है, किन्तु उस पर अद्वैत की छाप लगाकर । योग-दर्शन की मूल भावना 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ।' ('योग-दर्शन सूत्र २) चित्त वृत्तियों का निरोध उलटवाँसी-पदों की सारभूत भावना है । भव-बन्धन से छुटकारे की

कल्पना वेदान्त के 'विवेक' एवं योग की (समाधि) इन दोनों से ही परिपुष्ट होकर उलटवाँसियों में मुखरित हुई है। उलटवाँसी शैली में सर्वाधिक महत्व (हठयोग) प्रतिपादित दर्शन, षट्-चक्र भेदन कुण्डलिनी, ऊर्ध्वगमन और सहस्रार चक्र में निवास, इड़ा-पिंगला का योग, सुषमना मार्ग की सात्विकता, चन्द्रसूर्य संगम और सप्तम अथवा अष्टम् लोक में साधक की ऊर्ध्ववृत्ति का निवास और तत् अवस्थाजन्य आनन्द, की अभिव्यक्ति को दिया गया है। प्रायः सभी सन्तों ने हठयोग प्रतिपादित साधना का वर्णन उलटवाँसी शैली के माध्यम से ही किया है। ऐसे ही पदों में 'हठयोग प्रदीपिका' प्रतिपादित शब्दावली अथवा सन्त-परम्परा में स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। सांख्य योग प्रतिपादित शब्दावली में कुछ उलटवाँसी प्रयोग यहाँ प्रस्तुत हैं—

(१) बलि रे अविला कोयल मौरी।
धरती उलटि गगन कूँ दौरो॥
गईयाँ बपड़ो सिंध ने घेरे।
मृतक पसू सूद्र कूँ उचरें॥
काटै ससत्र पूजै देव।
भूप करै करसा की सेव॥
तलि करि ढकणी ऊपरि झाल।
न छीजिगा महारस बंचेगा काल॥
दीपक बालि उजाला कीया।
गोरख कैसिरि परबत दीया॥'
(गोरख बानी, पद ५६)

(२) 'चली जात देखी एक नारी।
तर गागरि ऊपर पनिहारी॥
चली जात वह बाट ही बाटा।
सोवनहार के ऊपर खाटा॥
जाड़न मरै सपेदी-सौरी।
खसम न चीन्है धरणि भइ बौरी॥
साँझ-सकार ज्योति लै बारै।
खसम छाँड़ि सँवरै लगवारै॥'
(कबीर–बीजक, रमैनी ७३)

(३) 'सहज जोग सुख में रहै,
दादू निर्गुण जाणि।
गंगा उलटी फेरि करि,
जमुना माहें आणि॥'
(दादू दयाल)

(४) 'धरती मिली आकास को रे,
ऊँचे महल में बास पाया।
समुन्द में केल कियो मछरी,
पहार ऊपर जाय घर छाया॥
फूल सेती कली भई मिलि,
चाँद सूरज दोउ घर आया।
या कहै देखो जीभ बिना,
अनहद के तान गगन गाया॥'
(यारीसाहब)

(५) 'पाँच पचीस तीन लइ बाँधो
उलटी नाव चलाय।
तिरबेनी तट आसन माँडो,
गगन मण्डल मठ छाय॥
बिनुसिर बैठि अमीरस,
अभवँ लैलैं लहरि समाय॥'
(गुलाबसाहब)

उक्त विवेचन के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि सन्तों द्वारा प्रयुक्त उलटवाँसी शैली में (प्रायः सम्पूर्ण बानियों में) विचार-दर्शन की व्यंजना सर्वोपरि है।

सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्

(श्री वनवासी)

युगावतार भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों का सन्धि-सन्देश लेकर हस्तिनापुर जा पहुँचे। धृतराष्ट्र और दुर्योधन की ओर से आग्रह किया गया अनुनय विनय पूर्वक कहा गया कि महाराज आप हमसे सन्धि वार्ता-करने आये हैं। पाण्डवों के समान आप हमारे भी हितु हैं अतः आप हमारे ही राज-प्रासाद में ठहरिए, आपके निवास की वहां पहले से ही समुचित व्यवस्था कर दी गई है। क्योंकि पहले से ही हमें सन्धि दूत के रूप में आपके आगमन का वृत्त विदित हो गया था।

× × ×

युगावतार मुस्कराये और सौम्यता के साथ बोले—राजन् आपने जो व्यवस्था की है उसके लिए साधुवाद परन्तु मैं ………

× × ×

धृतराष्ट्र और दुर्योधन दोनों एक साथ बात काटते हुए बोले 'मैं' क्या महाराज ?

× × ×

श्रीकृष्ण ने हँसते हुए कहा 'मैं' यही कि मैं महात्मा विदुर के यहां ठहरने का निश्चय कर चुका हूं। आप मुझे विदुर की कुटिया बताइये वह कहां किस दिशा में है। मुझे वहीं जाना है। आपके राज-प्रासादों की अपेक्षा उस साधु की पर्ण कुटी के निवास में मैं अधिक आनन्द पा सकूँगा।

× × ×

धृतराष्ट्र और दुर्योधन दोनों ने अपनी पेशबन्दी की असफलता स्वीकार की। विदुर-कुटी का पता बताकर वे चुपचाप अपने राज-प्रासाद को लौट आये।

× × ×

युगावतार भगवान् कृष्ण विदुर की पर्ण-कुटी पर जा पहुंचे। महात्मा विदुर ने मुक्त हृदय से उनका स्वागत किया। जब तक सन्धिवार्ता चलती रही—युगावतार श्रीकृष्ण विदुर-कुटी को ही अपने आवास से पवित्र बनाये रहे।

× × ×

दुर्योधन का राज-प्रासाद और उसकी राजसी सुविधायें उन्होंने इसीलिए ठुकराई थीं कि सन्धिवार्ता जैसे पवित्र कार्य में कहीं दुर्योधन और धृतराष्ट्र के अपावन आचरण और उनके तामसी आहार का विकार उन के मन में न आ जाय।

× × ×

विकारों से विलग रहने वाले गुणातीत महापुरुष भी जब अपने मन को विकार रहित बनाये रखने के लिए महात्माओं की कुटिया में राज-प्रासादों की अपेक्षा, भूमि पर सोना और कन्द-मूल फल खाकर रहना श्रेयस्कर समझते हैं तब क्यों न हम भी अपने जीवन को भी ऐसा ही बनाने का प्रयत्न करें।

जीवन की कुछ अनुभूतियाँ —

श्री सद्गुरु महिमा

(श्री ईश्वरीप्रसाद खट्टर)

जीवन दान

अप्रैल १९५५ की घटना है, मैं घाटकोपर स्टेशन (बंबई) पर सुबह ९-१५ बजे की लोकल गाड़ी में प्रति दिन की भाँति सवार होने पहुँचा। इस गाड़ी से मैं प्रायः अपने कार्यालय-स्थल बोरी बन्दर (V. T.) जाया करता था। उस दिन गाड़ी के प्रत्येक डिब्बे के प्रवेशस्थान पर मुसाफिर खड़े हुये थे इस कारण अन्दर पहुँचना कठिन था। दो डिब्बों के बीच खाली स्थान देख कर मैं (BUFF-ER) बफर पर खड़ा हो गया और गाड़ी ने प्रस्थान किया। बाईकला स्टेशन निकल जाने के बाद जब हमारी गाड़ी पुल के नीचे मोड़ पर पहुँची तब झटका लगने से हमारे पैर बफर से फिसल गये। उस समय हमारी गाड़ी की गति ५०-६० मील प्रति घंटा थी। अकस्मात हमारे मन ने "प्रभो" शब्द का स्मरण किया। उसी क्षण हमने अनुभव किया कि किसी शक्ति ने अपने कर कमलों का सहारा देते हुये हमारे समस्त शरीर को रेलगाड़ी के पहियों की भेंट होने से बचा लिया। उस दिन हमारी गाड़ी संडस्रोड स्टेशन पर खड़ी हुई और हम उस स्थान से आकर प्लेट फॉर्म पर खड़े-खड़े विचार करने लगे कि मुझ पतित को जीवन दान करने वाला दयालु कौन हो सकता है। हम यही सोचते रहे और हमारी गाड़ी हमें छोड़ कर चलदी। निष्कर्ष न निकलने पर हम अपने कार्यालय में पहुंचे। दो-तीन दिन तक विचार करते रहे परन्तु सन्तोषजनक फल न निकलने पर हमारा मन चिन्तित रहने लगा मानो हमारी प्रिय वस्तु खो गई हो। अगले दिन से मुझे अपने रहन सहन, व्यवहार इत्यादि पर निसन्देह घृणा होने लगी। मेरे मनमें झाँसी वापिस आने के विचार उत्पन्न हुए और इतने प्रबल होगये कि एक सप्ताह के भीतर तरक्की को ठुकरा कर मैं तबादले पर झाँसी आ गया। कुछ दिन पश्चात् पुनः मैं बंबई तुल्य जीवन का रस पान करने लगा। इस भाँति बीस माह व्यतीत हो गये।

१४ दिसम्बर सन् १९५६ को स्वप्न में मुझे एक महान पुरुष के दर्शन हुये। अपने मुखारविन्द से उन्होंने इन शब्दों का उच्चारण किया, "क्या तुझे इसलिए जीवन दान किया था कि तू अपने कर्तव्य से विमुख हो।" मेरी निद्रा जाग गई। मैं तुरन्त उठा, स्नान करके समीप शिवालय पहुच कर शंकरजी को एक लोटा जल चढाया और प्रणाम करते ही मुझे एक महात्मा जी की झलक प्रतीत हुई।

वह दृश्य आज भी मेरे नेत्रों के सामने स्पष्ट है जब मैं प्रभु जी के सन्मुख सिसकता हुआ अपने अपराधों के लिये क्षमा याचना कर रहा था। कुछ समय बाद मैं अपने निवास स्थान पर आकर नित्य कार्य में लग गया।

श्री कृष्ण-दर्शन

१६ दिसम्बर सन् १९५६ के प्रातः काल चार बजे मैं घूमने की दृष्टि से पहाड़ की ओर गया। अमुक स्थान पर पहुँचने पर मेरा मन अकारण प्रेम मग्न होगया और तुरन्त ही मेरे कंठसे अकस्मात् पहली बार, "हरिः ओम" शब्द दूसरी और तीसरी बार भी सर्वोच्च ध्वनि से स्वतः निकल पड़ा। ठीक उसी क्षण मेरे नेत्रों ने श्रीकृष्ण भगवान को सम्मुख प्रसन्नचित्त मुद्रा में देखा। मैं उस छवि को निहार ही रहा था कि मुस्कराते हुये वह बोले, "अब चलो"। वह एक फुट आगे चल रहे थे और मैं पीछे चल रहा था। दायें-बायें ओर सीधी कतार में कुछ देवतागण थे जिनमें से श्री सरस्वती जी दायीं ओर और कैलाश पति बायीं ओर थे। ये समस्त देवता पृथ्वी से लगभग आठ फुट की ऊँचाई पर कतारों में खड़े हुये तथा कैलाशपति कमलासन पर सुशोभित हो रहे थे। इनकी छवियों को हम भली प्रकार देखते थे। विशेष बात यह थी कि हम लोगों के हाथ पैर गति-शील थे परन्तु उन सबके नहीं थे। श्री कृष्ण भगवान ने हमारा परिचय समस्त देवताओं से कराया। कुछ समय उपरान्त मैं अपने स्थान पर वापिस आकर कार्य में लग गया।

इस लालसा हेतु मैं प्रति दिन प्रातःकाल घूमने जाता और वहाँ सतसङ्ग होता रहा। यह कार्यक्रम लगातार तीन माह तक चलता रहा। कई अवसर इस बीच ऐसे आये कि इन नेत्रों को श्री गौतम बुद्ध, श्री पवनसुत इत्यादि देवताओं की छवियों को दो फर्लांग के क्षेत्र में दर्शन करने का पृथक-पृथक सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस प्रकार प्रातःकाल सतसङ्ग होता था तथा सुषुप्त अवस्था में हमारे प्रभुजी उपदेश दिया करते थे। मुझ समान मूढ़ के उपर इस वातावरण का प्रभाव यह हुआ कि त्याग वृत्ति के विचार मन को अच्छे लगने लगे तथा एक घड़ी इस प्रकार की आई कि मुझे अकेले रहने में शान्ति मिलती थी, किसी मनुष्य से बातचीत करने की इच्छा नहीं होती थी और अन्त में मनुष्य मात्र से घृणा होगई। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि संसार पतितों से भरपूर है अतः रहने योग्य नहीं। इसका कारण केवल एक ही था कि दिनचर्या में श्री कृष्ण जी की छवि के बजाय भिन्न-भिन्न आकृतियाँ देखने में आती थीं तथा उनके व्यवहार से मनमें खिन्नता उत्पन्न होती थी। एक रात्रि को हमारे प्रभु जी ने ताड़ना देते हुए मुझे यह उपदेश दिया, "यदि तू मुझे पाना चाहता है तो मानव जाति से प्रेम कर"।

श्री सद्गुरु प्राप्ति

मेरी रुचि पुस्तके पढ़ने की कभी न थी।

परन्तु "कर्ता के कछु और है-धर्ता के कछु और" के अनुसार मुझे स्वामी रामतीर्थ तथा स्वामी विवेकानन्द जी की पुस्तकें पढ़ने के लिये मेरे एक मित्र ने मुझे बाध्य किया। उन पुस्तकों को पढ़ने में मुझे आनन्द आने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानो मेरी खोई हुई प्रिय वस्तु मुझे मिलने वाली है। अतः स्वामी रामतीर्थ जी के लेखानुसार हमने साधना आरम्भ करदी। इससे हमारे मन को काफी शान्ति मिली। साधना काल में एक स्थिति इस प्रकार की आई कि पथ प्रदर्शक पाने की मनमें इच्छा उत्पन्न हुई। यह इच्छा दिन प्रति दिन प्रबल होती गई और एक समय ऐसा आया कि उसे पाने के लिये मैं व्याकुल हो गया। पत्रोत्तर मिलने पर हम योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के स्थान, श्री सिद्ध गुफा, सवाई (आगरा) निश्चित तारीख पर सपरिवार पहुँच गये। आश्रम पहुँचने पर हमने एक सज्जन को अपने सन्मुख पाया जो श्वेत कुर्त्ता और धोती धारण किये हुये थे। मेरे प्रश्नोत्तर में उन्होंने बतलाया कि जिस स्थान की खोज मैं कर रहा था वह ठीक यही है। साधारण भेष को देखकर तथा अपने स्वाभाविक अज्ञान-वश मैं उन्हें पहचान न सका, कारण मेरी कल्पना कुछ विपरीत थी। इसलिये हम दोनों वहीं मुड़ कर टहलने लगे। पुनः सन्मुख आने पर उन सज्जन ने स्वतः हमारे मन की बात हमें कह सुनाई। मुझे तुरन्त आश्चर्य हुआ और खेद भी। आश्चर्य इसलिये था कि मन की बात बताने और सुनने की जीवन में प्रथम घटना थी और खेद इस लिये था कि पहचानने में मेरी भूल थी। मेरे मन में ऐसा प्रतीत हुआ कि "जिन सज्जन ने मन की बात बतलाई है कदाचित वे ही योगिराज जी हुए तब ?" हमें आभास हुआ कि मन की बात बतलाने वाला महान पुरुष होना चाहिए। अतः तुरन्त ही मैंने उन्हें प्रणाम किया तथा अपनी भूल की क्षमा-याचना की। उन्होंने मुस्कराते हुए मुझ से कहा, "कोई बात नहीं ऐसा हुआ ही करता है।"। कुछ समय बाद आरती हुई और हमको आशीर्वाद देते हुये श्री महाराज जी ने प्रसाद दिया जिसका फल ठीक वैसा ही हुआ जो उनके मुखारबिन्द से निकला था। हम लोग झाँसी आगये। श्री महाराज जी ने एक दिन मेरी प्रार्थना स्वीकार करके अपने चरणाविन्दों मे ले ही लिया। आदेशानुसार मैं साधना करने लगा। छुट्टी के दिन बहुधा मैं आश्रम ही पहुँच जाया करता था। शनैः शनैः श्री महाराज जी से संपर्क बढ़ता गया।

एक दिन करुणा-निधान ने मुझसे पूछा, "लल्ला क्या सोच रहे हो ?" उत्तर में बहुत ही साधारण रूप से मैंने कह दिया, "कुछ नहीं प्रभो"। उनके पुनः आदेशानुसार मुझे अपने विचार स्पष्ट करना ही पड़े जो इस प्रकार थे। मैं सोच रहा था कि यहाँ आकर मैंने आध्यत्मिक

विषय में कुछ पाया नहीं। श्री महाराज जी ने हमारे साथ जो घटनायें पूर्व घटी थीं विस्तारपूर्वक स्पष्ट करते हुये बतलाया कि श्री प्रभुजी अपने बालकों पर भिन्न-भिन्न रूप से कृपा किया करते हैं इसलिये हमारा इस प्रकार विचार करना निराधार था। मैंने अपनी भूल स्वीकार करते हुए श्री सद्गुरु देव से क्षमा प्रार्थना की। श्री सद्गुरुदेव-जी का आशीर्वाद पाकर हम अपनी साधना में जुट पड़े। कुछ ही समय बाद हमें साधना में आनन्द आने लगा जिसके फलस्वरूप मेरा मन निडर और प्रसन्न रहने लगा।

दिव्य चक्षु

योग योगिश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं हमारे श्री सद्गुरु देव जी का केवल एक लक्ष्य मानव जाति का कल्याण करना है। दूसरे शब्दों में मनुष्य को स्वस्थ बनाना तथा इस योग्य कर देना जिसके फलस्वरूप वह प्रति दिन उस सर्वशक्तिमान के दर्शन करता हुआ सदैव प्रसन्न चित्त रहे। श्री महाराज-जी यह "कृपा" जिज्ञासुओं पर निश्चय करते हैं जिसके फलस्वरूप साधक को उत्साह मिलता है। "कृपा" शब्द से हमारा अभिप्राय ठीक वही है जो श्री मद्‌भगवद् गीता के ग्यारहवें अध्याय के आठवें श्लोक में महायोगेश्वर श्री कृष्ण भगवान के मुखारविन्द से निकला है। जिस प्रकार श्री कृष्ण भगवान ने दिव्य चक्षु द्वारा अर्जुन का अज्ञान रूपी अंधकार एक क्षण में नष्ट कर दिया था ठीक उसी प्रकार हमारे हृदयेश श्री सद्गुरुदेव जी शरण में आये हुये बालक पर निसन्देह कृपा करते हैं। इस कृपा के आधार पर उसे बिलक्षण अनभूतियाँ हुआ करती हैं—श्री राम, श्री कृष्ण, श्री सदाशिव आदि महान पुरुषों के दर्शन हुआ करते हैं। दूसरे शब्दों में समझना चाहिये कि श्री महाराज जी ध्यान योग शक्तिपात संपत्ति प्रदान करके मनुष्य का कल्याण करते हैं।

शक्तिपात का अनुभव प्रत्येक साधक को साधना काल में निश्चय हुआ करता है। श्री तुलसीदास जी ने लोकप्रिय ग्रंथ "श्री रामचरित मानस" में जगह-जगह "पुलकित भये गात" शब्दों का प्रयोग किया है। "पुलकित" शब्द का अर्थ प्रायः सभी जानते हैं परन्तु जब उसके अनुभव का प्रश्न आता है तब अनभिज्ञता सुनने में आती है। श्री सद्गुरुदेव के चरणाविन्दों में स्थान पाया हुआ बालक अनभिज्ञ नहीं रहता यह अकाट्य सत्य समझना चाहिये। श्री महाराज जी की देन अपने बालकों के प्रति अद्‌भुत है। जो मन की एकाग्रता से आरम्भ होती हुई समाधि (परमानन्द) तक पहुँचा देती है।

जीवन तत्व

हमारे प्रभुजी ने शरीर को स्वस्थ बनाने अथवा स्वस्थ रखने हेतु अनोखे व्यायाम का निर्माण किया जो "जीवन तत्व" के नाम से प्रसिद्ध है। इसे आदेशानुसार बालक करे या वृद्ध, स्त्री करे या पुरुष निश्चय लाभ होता

है। साधना सरल है और फल विलक्षण-जैसा नाम वैसा गुण भी है। जीवन तत्व का आश्रम लेने वाला वृद्धापन का शिकार नहीं बनता इसका प्रमाण देखने, सुनने तथा स्वयं करने पर मिलता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिये जीवन तत्व साधन अचूक "राम-बाण" है।

जीवन आनन्द

प्रत्येक प्राणी, मुख्य कर मनुष्य, शिशु-काल से वृद्धपन पर्यन्त, आनन्द की खोज में, जाने अथवा अनजाने, लगा ही रहता है। आनन्द की प्राप्ति के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के संघर्ष करता है जिनसे प्रायः सभी लोग परिचित हैं। इस संघर्ष के फलस्वरूप कोई बुद्धिमान, कोई धनवान, कोई शक्तिमान तथा कितने ही तीनों के अधिकारी होते हुए भी अपने लक्ष तक पहुँचने में असमर्थ रहते हैं। इसके दो कारण हो सकते हैं, पहला, "आनन्द" शब्द की परिभाषा से अनभिज्ञता, तथा दूसरा सत्सङ्ग का अभाव। सत्सङ्ग के लिये शक्तिशाली पथ-प्रदर्शक होना अति आवश्यक है। वह इसलिये कि निर्बल का निर्वाह सबल का आश्रय लिये बिना होता ही नहीं है। 'चमत्कार को नमस्कार' के अनुसार प्रत्येक प्राणी शक्ति को पूजता है। अभिप्राय यह है कि आनन्द और परमानन्द की प्राप्ति, योग्य मार्ग दर्शक द्वारा ही हो सकती है अन्यथा नहीं।

निष्पक्ष रीति से, मेरा निजी विचार है कि मनुष्य देह पाकर प्राणी को चाहिए कि अरुचि अथवा समय का अभाव हुते हुये भी वह सत्सङ्ग अवश्य करे।

जहाँ तक जिज्ञासुओं का सम्बन्ध है उन्हें सत्सङ्ग का लाभ बटोर लेना चाहिए। सिद्धेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के चरणारविन्दों में स्थान मिलने का मुझे गौरव है और वह इसलिये कि नैतिक, भौतिक तथा आध्यात्मिक विषयों के वे अद्भुत ज्ञाता हैं। उपरोक्त घटनाओं के अतिरिक्त जो व्यक्तिगत मेरे साथ घटी हैं तथा देखने और सुनने में आई हैं वे सबकी सब पुष्टि करती हैं कि आज के युग में, सर्व शक्तिमान साधारण भेष की ओट में, मनुष्य मात्र के कल्याण हित योगामृत वर्षा कर रहा है। ऐसे सद्गुरुदेव को पाकर हम उन चरण कमलों के हृदय से आभारी हैं जिन्होंने मुझ पतित को अपनाने की कृपा की है। अतः हम उन्हें बारम्बार साष्टांग प्रणाम करते हैं। वे प्राणी वास्तविक भाग्यशाली तथा सराहनीय हैं जिनका अनुराग श्री चरणों में है। हम उन्हें सप्रेम नमस्कार करते हैं।

❋ गुणों की वृत्तियां ❋

जब तुम्हारा मन सत्वगुण के आश्रित होता है तब तुम में शम-दम तितिक्षा विवेक वैराग्य,तप, सत्य, दया स्मृति, संतोष, सेवा, बुद्धि, धृति, क्षमा, श्रद्धा लज्जा, ज्ञान, आस्तिकता, निस्पृहता विनय और दंभ रहित धर्म भाव उत्पन्न होते हैं और, तुम्हें परम आनंद की प्राप्ति होती है।

जब तुम्हारा मन रजोगुण युक्त होता है तब तुम्हारे में कामना कर्म, अभिमान, तृष्णा, सुख की इच्छा, दंभ कामुकता असत्य भाषण, अधीरता, अधिक आनंद भ्रमण, भेद बुद्धि,विषय, तृष्णा, मदजनित उत्साह, आत्मश्लाघा में प्रेम हास्य पुरुषार्थ, बल और उद्यम की प्रवृत्ति होती है

जब तुम्हारा मन तमोगुण युक्त होता है तब तुम में नास्तिकता, विषाद,दुष्टमति, भय, निन्दित कर्म में प्रवृत्ति, अज्ञान अति क्रोध, और मूर्खतादि दोष प्रकट होते हैं। साथ-साथ लोभ, मिथ्या व्यवहार,हिंसा, याचना, पाखण्ड कलह, शोक मोह, क्लेश, दीनता, दरिद्रता, आशा एवं प्रमाद से अनुद्यमी होकर तुम अकर्मण्य और आलसी होते हो।

इन तीनों गुणों की वृत्तियों से होने वाले कर्मों के तीनो प्रकार के फलों और परस्पर मिले हुए गुणों का परिचय करने से तुम को प्रभु प्राप्ति के साधन में बड़ी सहायता मिलेगी। साथ ही साथ तुम अपने मनप्राण की गति-विधि सहज ही बदल सकोगे। क्योंकि इस ज्ञान के बिना तुम अपने मन पर अपना अधिकार नहीं जमा सकते। इसलिए इनका जानना अतीव आवश्यक है।

जब चित्त प्रसन्न हो, इन्द्रिय शान्त और प्रकाश युक्त हों, देह निर्भय हो एवं मन अनासक्त हो तब समझना कि प्रभु प्राप्ति के स्थान सत्वगुण का आविर्भाव हुआ है। जब तुम क्रिया कर्म में तत्पर हो बुद्धि तुम्हारी डगमगाने लगे, चित्त चंचल अशान्त हो जाय और मन भ्रम में पड़ जाय तो समझ लेना कि रजोगुण बढ़ गया है। जब तुम धारणा-ध्यान करने में असमर्थ हो जाओ अन्तरात्मा में तुम्हारा मन लगना ही न चाहे आलस्य और तन्द्रा से तुम्हारा मन मूढ़ता को प्राप्त होकर शून्यवत् अकर्मण्य हो जाय अज्ञान तुम्हें आ घेरे, ग्लानि बढ़ने लगे, तुम अपने को भूल जाओ तब समझना तुम्हारा सर्वनाश करने वाला तमोगुण बढ़ रहा है।

× × ×

सत्व गुणों के बढ़ने से दिव्य शक्तियों का बल बढ़ता है। रजोगुण के बढ़ने से आसुरी वृत्तियों का बल बढ़ता है और तमोगुण के बढ़ने से राक्षसी वृत्तियों का बल बढ़ता है। सत्व के आश्रय से तुम दिव्यकर्म, धारणा ध्यान समाधि का परम सुख पाओगे रजोगुण के आश्रम से अकर्म, इर्षा, द्वेष मान बड़ाई, दंभ, अहंकार करके मरोगे। ❋

इस अनन्त जीवन-प्रवाह में —

(श्री दिव्य)

'जीवन' देकर 'नव-जीवन' को, जब मैं यहाँ वरण करता हूँ,
एक नयी मंजिल पर जब मैं अपने नये चरण धरता हूँ।
पहन नये परिधान नया जब मैंने अपना नाम धर लिया,
तब दुनिया ने मुझे 'मरगया' यह कह कर बदनाम कर दिया ॥

× × ×

पर्ण-कुटी अपने रहने की मैंने नई बना डाली है,
नये-नये पल्लव लाया हूं नई-नई ही हरियाली है।
नये प्राण का स्पन्दन है जल का नया भाग लाया हूं,
नया एक आकाश नई धरती पर नई आग लाया हूं ॥

× × ×

इस अनन्त जीवन प्रवाह में मैंने अपनी करवट बदली,
नाहक मुझे 'मृतक' की संज्ञा देने निकली दुनिया पगली।
मेरा परिवर्तन जगती में कुछ ऐसे परिवर्तन लाया,
कुछ रोये, कुछ हँसे किसी ने खोया मुझे किसी ने पाया ॥

× × ×

'भूतकाल' के सभी पुराने नाते 'वर्तमान' ने तोड़े,
नई देहरी नये द्वार पर फिर से हुए नये गठजोड़े ॥
कोई एक नई जननी ले मुझको नया पालना आई,
नई उमंगों नई लोरियों में भर नई लालना लाई ॥

× × ×

धरती वही वही है सूरज और वही हैं चाँद-सितारे।
पर परिजन हैं नये, नये हैं मेरे गली गोट गलियारे ॥

सब कामनाओं की सिद्धि

भगवान श्री कृष्ण ने एक समय परम प्रिय उद्धव को संबोधित करते हुए कहा–हे उद्धव अहिंसा, सत्य, अस्तेय असंगता, लज्जा, असञ्चय, आस्तिकता, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा, अभय तथा शौच, जप तप, होम श्रद्धा, अतिथिका सत्कार, ईश्वर-पूजन ,तीर्थभ्रमण, परोपकार, सन्तोष, और गुरुसेवा -में यम और नियम बारह-बारह कहे गये हैं। इनका पालन करने से मनुष्यों को इच्छानुसार सब कामनाओं की सिद्धि होती है।

आगे और भी तात्विक विवेचन करते हुए धर्म और तत्व नीति के संस्थापक भगवान श्रीकृष्ण ने कहा —

'निष्ठापूर्वक बुद्धि का मुझमें लगाना ही शम है, इन्द्रिय सयम को दम कहते हैं, दुःख सहन करने का नाम तितिक्षा है, और जिह्वा तथा उपस्थेन्द्रिय को जय करना ही धैर्य है। क्षमा कर देना ही परमदान है। कामनाओं का त्याग ही यहाँ परम तप कहलाता है। स्वभावतः अस्थिर मन को जीत लेना ही श्रवीरता है और सर्वत्र सम दर्शन करना ही परम सत्य है। सुमधुर वाणी को विद्वजन ऋत कहते हैं। कर्म में आसक्ति न रखना ही शौच है और कर्मों का त्याग ही संन्यास है। धर्म ही मनुष्यों का इष्ट धन है। सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न यज्ञ पुरुष में ही हूँ। ज्ञान उपदेश ही दक्षिणा है और प्राणायाम ही मनुष्यों का परम बल है।

× × ×

मेरा षड् विधि ऐश्वर्य ही भग है, मेरी ,उत्तम भक्ति का प्राप्त होना ही लाभ है। आत्मा और परमात्मा में भेद बुद्धि का न होना ही विद्या है। और निन्दित एवं दुष्कर्मों से दूर रहना ही लज्जा है।

निरपेक्षता आदि गुण ही श्री है। सुख तथा दुःख से परे हो जाने का नाम ही परम सुख है, विषय सुख की अपेक्षा करना ही दुःख है और जो बन्ध तथा मोक्ष को जानता है वही पंडित है। देह आदि में अहं बुद्धि रखने वाला ही मूर्ख है, शास्त्र ही मेरी प्राप्ति का मार्ग है। चित्त विक्षेप ही कुमार्ग है। और सत्व गुण का उदय होना ही स्वर्ग है। तमोगुण का बढ़ना ही नरक है तथा गुरु रूप बन्धु मैं ही हूँ। मनुष्य शरीर ही घर है। और गुणवान ही सच्चा धनवान कहलाता है।

जो महा असन्तुष्ट है वही दरिद्री निर्धन है, जो अजितेन्द्रिय है वही दीन कृपण है। जो विषयों में आसक्त नहीं है वही समर्थ स्वाधीन ईश्वर है। और जो विषयी है, असमर्थ है वही पराधीन है। जिससे मेरी भक्ति होती हो वही धर्म है तथा सर्वत्र एक आत्मा का दर्शन ही ज्ञान है। गुण रूप विषयों में अनासक्त रहना ही वैराग्य है और अणिमादि सिद्धियां ही ऐश्वर्य है।

— श्रुतिसार

मोह का महल ढहेगा ही

(कुमारी इन्दु खन्ना, बी.ए, कानपुर)

कौड़ी कौड़ी महल बनाया, लोग कहे घर मेरा ना घर मेरा ना घर तेरा, चिड़िया रैन बसेरा।

— यह संत वाणी कितनी सत्य है, यह कहना नहीं होगा। जिसे हम अपना भवन कहते हैं, क्या वह हमारा ही भवन है ? जितनी आसक्ति, जितनी ममता से हम उसे अपना भवन मानते हैं, उतनी ही आसक्ति उतनी ही ममता उसमें कितनों की है, हम जानते हैं। लाखों चींटियाँ गणना, से बाहर मक्खियाँ- मच्छर सैकड़ो मकडियाँ, पक्षी और पतंगे ऐसे भी दूसरे प्राणी जिन्हें हम जानते तक नहीं—लेकिन मकान उनका नही हैं यही कैसे ? उनका ममत्व भी तो इसी कोटि का है जिस कोटि का हमारा।

— एक विद्वान संन्यासी मण्डलेश्वर थे। उनकी बड़ी अभिलाषा थी गंगा किनारे आश्रम बनवाने की। बड़े परिश्रम से कई वर्ष की चिन्ता और चेष्टा के परिणाम स्वरूप द्रव्य एकत्र हुआ। भूमि ली गयी भवन बनने लगा। विशाल भव्य भवन बना। आश्रम का और उसके गृह प्रवेश का भंडारा भी बड़े उत्साह से हुआ, सैकड़ों साधुओं ने भोजन किया भंडारे की जूठी पत्तलें फेंकी नही जा सकी थीं, जिस चूल्हे पर उस दिन भोजन बना था, उसकी अग्नि बुझी नहीं थी कि गृह-प्रवेश के दूसरे दिन प्रभात का सूर्य स्वामी जी ने नहीं देखा। उसी रात्रि उनका परलोक वास हो गया !

— कुछ भी हो— काल अपना कार्य बंद नही कर देगा। जो बना है, नष्ट होकर रहेगा। महल का परिणाम है खंडहर । वह खंडहर, जिसे देख कर मनुष्य ही डर जाता है। रात्रि तो दूर, जहाँ दिन में जाते समय भी सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य का मोह उससे महल बनवाता है और महल खंडहर बनेगा, यह निश्चित है।

— केवल महल ही खंडहर नहीं होता। जीवन में हम जो मोह का विस्तार करते हैं —धन, जन, मान अधिकार भूमि—मोह का महल ही है यह सब और मोह का महल ढहेगा ही। उसका वास्तविक रूप ही है खंडहर ।

अच्छा स्वभाव हमेशा सुन्दरता के अभाव को पूरा कर देगा लेकिन सुन्दरता अच्छे स्वभाव के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकती।

—एडीसन

एक वयोवृद्ध साधक के ध्यानानुभव

(श्री सद्‌गुरु देव जी को प्राप्त पत्र के आधार पर)

[पूर्व प्रकाशित से आगे]

नित्य की भांति ४-१०-६८ को सुबह ४ बजे इष्टदेव के ही रूप में उठा । और उसी रूप में जाप करता रहा । उसके बाद पुनः स्नान आदि करके ध्यान में बैठा तो इष्टदेव के रूप में ही मालूम पड़ा । आज के ध्यान में श्वास नहीं चढ़ा । ध्यान लगते ही मैंने बहुत बड़ा प्रकाश देखा । मेरा सूक्ष्म शरीर उठता हुआ दिखलाई पड़ा और मुझे संकेत मिला आओ तुम्हें इन्द्रलोक दिखला दें। मैं आसन लगा कर ध्यान में बैठा था ।

इन्द्रलोक

मैं सूक्ष्म शरीर से एक ऐसे स्थान पर पहुंचा जिस पर एक सोने का फाटक लगा हुआ था । हे प्रभो ! जिसकी सुन्दरता का वर्णन मैं करने में असमर्थ हूं । अन्दर गया तो दैदीप्यमान प्रकाश फैला हुआ था वहां के रहने वाले अति सुन्दर वस्त्र पहने थे । उन लोगों ने मुझ से पूछा कहां से आरहे हो, इस पर मैंने जवाब दिया कि काशी से आरहा हूं । पुनः प्रश्न किया किसके शिष्य हो मैंने उत्तर दिया योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी का शिष्य हूं। तब उन्होंने कहा जाओ और घूमों । मैं घूमने लगा । हे प्रभो वहां के बाग बगीचों की शोभा अवर्णनीय थी । एक विशाल मंदिर था जिसकी शोभा का वर्णन मेरी शक्ति से परे है। उसके बाद जब आगे बढ़ा तो एक सफेद हाथी पर जिस पर सोने का छत्र लगा हुआ था इन्द्र देवता आते हुए दिखलाई पड़े। उनके पास आने पर उन्होंने प्रश्न किया कहाँ से आये हो व किसके शिष्य हो । मैंने उत्तर दिया मैं काशी से आया हूँ व योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी का शिष्य हूं । इस पर इन्द्र जी ने कहा जाओं घूमो । जब आगे गया तो एक अति सुन्दर मंदिर दिखलाई दिया जिसमें देवियां इकट्ठी पूजा कर रही थीं । जब उन देवियों ने मुझे देखा और कहां आओ तुम भी पूजा करलो ये तुम्हारे गुरु जी है। मैंने जब गौर के साथ उस मूर्ति को देखा तो मुझे कुछ महाप्रभु जी की शकल प्रतीत हुई किन्तु नाक टेढी थी। इस पर मैंने कहा कि यह हमारे गुरुजी नहीं है । मैं इनकी पूजा नहीं करूगां । इस पर उन देवियों ने कहां कि अच्छा हम अब तेरी पूजा करेंगी । यह कह कर सफेद फूलों की माला से मुझे ढक दिया। उसके बाद कहा चलो कुछ खालो मैंने कहा मैं कुछ नहीं खाऊगां । उसके बाद देखा एक व्यक्ति गेरुआ वस्त्र पहने श्री गुरुदेव के रूप में आये और उस व्यक्ति ने कहा कि मैं तुम्हारा गुरु हूँ । इस पर मैंने गौर से देखा तो आप नहीं थे । पुनः मैं आगे बढ गया इस तरह घूमते-घूमते मुझे घण्टा डेढ घण्टा लगा। इसके बाद मेरा ध्यान खुल गया । उसके बाद

पुनः ध्यान लगा और श्वास चढ़ा। उसी ध्यान में मैने नाभि के पास कमल पर बैठी देवी जी का इष्टदेव जी का मेरे सूक्ष्म शरीर ने पूजन किया। उसके बाद आशीर्वाद मिला। ध्यान खुल गया मंत्र का जाप चलता रहा व इष्टदेव का रूप बना रहा।

हे प्रभो नित्य की भांति ५-१०-६८ प्रातः शौच अदि से निवृत होकर जप करना आरम्भ किया। जप करते समय प्रभु जी व महा प्रभ जी के दर्शन हुए। हे गुरुदेव आप से मुझे तेज मिलता रहा। मैं इष्ट देव के ही रूप में लय हुआ पांच हजार मंत्र का जाप किया। उसके बाद पुनः ध्यान में बैठा तो हे प्रभो आपका, इष्ट देव का, देवी जी का आरती पूजन किया। इसके बाद ध्यान लगते ही मैं इन्द्रलोक गया। और इन्द्रदेव के सामने जाते ही इन्द्र ने कहा तुम आये और इतना कहकर खडी हुई देवियों को आज्ञा दी जाओ इनको घुमाओ। कुछ समय घूमने के बाद ध्यान खुल गया। पुनः ध्यान लगा तो मैं एक ऊंचे पर्वत पर जो बिल्कुल सफेद था चढ़ता चला जा रहा हूं। बहुत चलने पर ऊपर पहूचां तो वहां देखा एक वृक्ष है उसके नीचे पचीसों देवता बैठे है। कोई दाड़ी जटा युक्त है कोई मुकुट धारण किये हुऐ है जिसकी शकल देखने में प्रायः लाल मालूम पड़ती थी। वहीं पर एक ऊंचे टीले पर मनुष्य की आकृति जैसा एक कौआ बैठा था उसके पास पहुंचने पर उस कौऐ ने मुझ से प्रश्न किया किसके शिष्य हो। मैंने महा प्रभु श्री रामलालजी का शिष्य हूं। बड़े आग्रह से मुझे बैठ ने की आज्ञा मिली। उसके बाद श्री सरस्वती जी का आगमन हुआ उन्होंने आकर मेरे बारे में पूछा यह कौन हैं। इस पर उस कौए ने ही जवाब दिया यह महा प्रभु श्री रामलाल जीका शिष्य है इस पर सरस्वती जी ने मेरे शिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया। उसके बाद भगवान शंकर पार्वती सहित बैल पर सवार हुए वहीं आगये। आने पर उन्होने भी प्रश्न किया किया कौन है। इस पर उस कौऐ ने ही उत्तर दिया कि ये महा प्रभु श्री रामलाल जी के शिष्य हैं। इस पर, शंकर भगवान ने कहा कि मैं इन्हें जरा सा तेज देदूं। इसके बाद उन्होंने नेत्र खोला और उसमें से दिव्य प्रकाश मुझ पर पड़ा और मैं छटपटाने लगा। इसके पश्चात् नारदजी आये ब्रह्माजी आये विष्णु जी गरुड़ पर सवार होकर आये इनसब ने वही प्रश्न किया कि यह कौन है उस कौए ने जवाब दिया कि ये महा प्रभु श्री रामलाल जी के शिष्य हैं इसके बाद कुबेर जी आये उन्होंने भी यही प्रश्न किया और उन्हें भी यही उत्तर दिया गया कि यह महा प्रभु श्री रामलाल जी के शिष्य हैं। इस पर कुबेर जी ने कहा तुम्हें धन चाहिये। मैंने कहा गुरुदेव की आज्ञा के बिना मैं कुछ नहीं ले सकता। इस पर उन्होंने कहा तुम्हारे गुरुदेव वहां बैठे हैं

पूछ लो। मैंने जब उधर देखा तो मुझे यह प्रतीत हुआ कि मेरे गुरु देव नहीं हैं। उसके पश्चात् काली आकृति वाले भैंसे पर सवार भयंकर आकृति के अपने गणों के साथ यमराज आये। उन्होंने भी वही प्रश्न किया कि यह कौन हैं। इस पर उन्होंने ही जवाब दिया कि ये महा प्रभु श्री रामलाल जी के शिष्य हैं। इस पर यमराज ने चिढ़ कर कहा महा प्रभु श्री रामलाल जी ने अपने शिष्य को नरक में न जाने देने का ठेका ले रखा है। इसके बाद यमराज ने कहा कि जाओ जहां जाना चाहो। नरक में जाने से तुम बच गये।

इसके पश्चात् श्री शंकर जी ने कहा कि आज रामायण की कथा होनी चाहिए इस पर कौए रूप काकभुसुन्ड जी ने कहा कौन सी कथा होनी चाहिये। भगवान शंकर जी कहा कि आज रामजन्म की कथा होगी। इस पर काक भुसुण्ड जी जी ने कहा
" भये प्रगट कृपाला दीन दयाला, आदि यह शब्द मुझे साफ-साफ सुनाई पड़े। उसके बाद मैंने चलना चाहा। तब काकभुसुण्ड जी ने कहा—ठहरो सप्त ऋषि आ रहे हैं इस पर सप्त ऋषि और श्री राम-लक्ष्मण को कन्धे पर लिये हनुमान आये। आकर उन्होंने भी यहीं प्रश्न किया कि यह कौन है। तब काक-भुसुण्ड जी ने उत्तर दिया कि ये महा प्रभु श्री रामलाल जी के शिष्य हैं। इस पर मुझे संकेत हुआ कि बस। तब मैंने आपका इष्ट-देव जी का व उस देवी जी की आरती पूजन किया। और आशीर्वाद मिला। उसके बाद ध्यान खुल गया।

नित्य की भांति ६-१०-६८ को शौचादि से निवृत होकर पांच हजार जप पूरा होने के बाद ध्यान में बैठा। ध्यान लगते ही हे प्रभो आपका दर्शन प्रथम हुआ। मेरे सूक्ष्म शरीर ने आपका, इष्ट देवी जी का तथा देव जी का आरती पूजन किया उसके बाद मुझे संकेत हुआ कि चलो ब्रह्मलोक। इस पर देवी ने सर पर हाथ रखकर कहा चलो ब्रह्मलोक। इसके पश्चात् मैं एक दिव्य प्रकाश में अति सुनसान जगह में चलने लगा बहुत दूरतक चलता चला गया और फिर थक कर बैठ गया और कुछ विश्राम के बाद उठकर चलने लगा। हे प्रभो आगे चलने पर बहुत सी सुन्दर कुटियाँ दिखाई दी। उसमें ऋषि बैठकर के जपतप हवन कर रहे थे। कहीं पर सामूहिक हवन भी हो रहा था। ऐसा ही देखता-देखता बहुत दूर तक चला गया। आगे चलकर हे प्रभो एक नदी दिखाई दी, बहुत से ऋषि-मुनि उसमें स्नान कर रहे थे। मैं उन लोगों के साथ नदी किनारे गया। जब मैं मैं ने स्नान करने के लिये नदी में जाना चाहा तो लोगों ने मुझे पकड़ लिया और कहा कि तुम इसमें स्नान नहीं कर सकते। बगैर बतलाये कि तुम कौन हो। तब मैंने कहा महा प्रभु श्री रामलाल जी का शिष्य हूं। उसके बाद उन ऋषि ने स्नान करने दिया। वह नदी के जल नहीं

दूब मालूम पड़ता था ! स्नान करके संध्या तर्पण किया, सूर्य को जल चढ़ाया और बैठ कर गुरु मंत्र का जाप किया जाप। करने के बाद फिर चलना आरम्भ किया चलते-चलते बहुत दूर पर एक बहुत बड़ा स्वर्ण का फाटक देखा जिसमें बहुत से सफेद पोशाक वाले जा रहे थे और पहरे वाले उनकी जांच करके तब अन्दर जाने देते थे। मैं भी अन्दर जाने लगा मुझे भी रोका गया और पूछा गया कि तुम कौन हो। इस पर महा प्रभु श्री रामलाल जी का नाम बतलाया तब कहा अब जा सकते हो। जब मैं अन्दर गया तो वहां पर किस्म-किस्म की कुटियाऐं तथा महात्माओं को हवन करते देखा। हे गुरुदेव वहां पर किसी से कोई बात नहीं कर रहा था केवल हवन जप तप करते देखा। चलता ही चला गया और थक कर विश्राम करने के लिये बैठ गया। कुछ आराम करने के पश्चात फिर चलदिया। चलते चलते एक बहुत ही विशाल बारादरी स्वर्ण-स्तम्भों को दिखलाई पड़ा। हे गुरु देव मैं यह नहीं बतला सकता कि कितनी विशाल थी। मैं उसमें घूमने लगा तो पार नहीं पा सका। इसके बाद संकेत मिला आज यही तक कल आगे का देखना। इसके बाद आपकी इष्ट-देव जी महाप्रभु जी की देवी जी की आरती की। इसके बाद ध्यान खुल गया।

नित्य की भांति ७-१०-६८ को प्रातः शौच आदि से निवृत होकर जप किया। मैं इष्ट देव के रूप में लय था। जाप पूरा होने के बाद ध्यान में बैठा तो प्रथम इष्ट देव गुरु देव जी, देवी जी की आरती पूजन किया फिर यात्रा आरम्भ हुई। रास्ते में कल की भांति ही वहीं वस्तुऐं दिखलाई दी। आगे बढते चले गये। चलते-चलते मैं थक गया और रोने लगा आराम किया और चलने लगा। आगे चलने पर एक स्वर्ण का फाटक दिखलाई दिया वह बहुत बड़ा नगर दिखाई देता था। वहां के व्यक्ति मुकुट धारण किये हुए लाल वस्त्र धारण किये थे। स्वाध्याय हवन जप तप कर रहे थे। मैं बहुत दूर तक देखता चलता रहा और हे गुरुदेव प्रभु जी वहाँ के वह व्यक्ति यही शब्द कहते रहे। धन्य हो महा प्रभु रामलाल जी" रास्ते में मुझे शंकर भगवान तथा अन्य देवता मिले। उन्होंने कहा कहां जा रहे हो। क्या ब्रह्मलोक जा रहे हो। चले जाओ अभी बहुत दूर है। फिर आगे बढने लगे और बढ़ते चले गये थक गये। इसके बाद आपका इष्ट देव जी व देवी जी का आरती पूजन आदि किया। और ध्यान खुल गया।

विवेक की शक्ति

जो दृष्टिसे दिखाई पड़ता है वही दृश्य है और जो मनसे दिखाई पड़ता है, वह भास है। जो मनसे भी परे और निराभास है, उसे विवेकसे देखना या जानना चाहिए। जहाँ दृश्य और भाससे काम नहीं चलता, वहाँ विवेक पहुँचता है। —समर्थ श्री रामदास

योग-दर्शन में 'ईश्वर-प्रणिधान'

(श्री कृष्णानन्द गुप्त, कछुवा, मिर्जापुर)

महर्षि पतञ्जलि देव ने 'योगदर्शन' में क्रियायोग के तीन रूप बतलाये हैं। यथा - **'तपस्स्वाध्यायेश्वर प्रणि-धानानि क्रिया योगः'** अर्थात्- तप, स्वाध्याय व ईश्वर - प्रणिधान क्रियायोग है। प्रस्तुत लेख में हम इसके एक मात्र अंग 'ईश्वर-प्रणिधान' पर यथामति विचार करने का प्रयास करेंगे।

हमारे पूर्वाचार्यों ने समाधि-सिद्धि के लिए जहाँ अनेकानेक साधनों का निर्देश किया है, वहाँ भगवान पतंजलि देव ने एक परम सरल साधना 'ईश्वर प्रणिधानाद्वा' की आज्ञा प्रदान की है। 'ईश्वर-प्रणिधान' का स्पष्टीकरण बहुत ही सुन्दर रीति से 'योगभाष्य' में किया गया है-

'ईश्वर प्रणिधान तस्मिन परम गुरौ सर्व कर्मार्पणम्।'

(यो० द० २/३२ या० प्र० भा०)

उस परम गुरु परमेश्वर के निमित्त सम्पूर्ण कर्मों को समर्पण कर देना या कर्मफलों का त्याग करना 'ईश्वर-प्रणिधान' है।

जिस परम गुरु परमेश्वर के निमित्त सम्पूर्ण कर्मों के समर्पण की आज्ञा मिली है, उनका स्वरूप क्या है? क्योंकि संसार में कोई श्रीराम को कोई श्रीकृष्ण को कोई श्रीब्रह्मा को कोई श्रीविष्णु इत्यादि को ईश्वर बताते हैं अतः ईश्वर के स्वरूप का निरूपण महर्षि ने योगदर्शन के तीन सूत्रों में किया है -

(१) **'क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।'**

(यो० द० १/२४)

अर्थात्-क्लेश, कर्म, विपाक आशयों से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है।

(२) **'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्।'**

(यो० द० १/२५)

अर्थात्-जिससे अधिक कोई दूसरा नहीं है वह सर्वज्ञ है, उसमें ज्ञान पराकाष्ठा को पहुँच चुका है।

(३) **'पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्।'**

(यो०द० १/२६)

समय के दायरे में बद्ध न होने के कारण वह (ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि) प्राचीन गुरुओं का भी गुरु परम गुरु है, पूर्व पुरुषों का भी बड़ा है।

अब हम इन सूत्रों में आये क्लेश, कर्म विपाक का अर्थ समझा कर यह बताने की कोशिश करेंगे कि वह सर्वोच्च सत्ता क्या है जिसे योगदर्शन में ईश्वर की संज्ञा प्रदान की गई है।

योग दर्शन में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और मृत्युभय ये पाँच' क्लेश' बताये गये हैं-

'अविद्याऽस्मिता राग द्वेषाभि-निवेशाःक्लेशाः।'

(यो० द० २/३)

कर्म चार प्रकार का होता है-: शुक्ल, कृष्ण,

शुक्ल-कृष्ण और अशुक्ल-कृष्ण। पाप कर्म तथा हिंसा, व्यभिचार आदि का समूह कृष्ण कर्म' के अर्न्तगत। तप, स्वाध्याय, ध्यान आदि का समूह शुल्क-कम के अन्तर्गत। परपीड़ा, अनुग्रह (पाप व पुण्य मिले हुये) आदि का समूह 'शुक्ल-कृष्ण' के अन्तर्गत। पाप व पुण्य दोनों से रहित ईश्वर समर्पित कर्म' अशुक्ल-कर्म' के अन्तर्गत आते हैं।

'कर्मा शुक्ला कृष्णं योगि नास्त्रिविध मितरेषाम्।

अविद्या आदि क्लेशों के रहने पर कर्मफल, जन्म, आयु और भोग होता है—

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।'
(यो०द०२/१३)

इन सूत्रों के द्वारा हमें सुस्पष्ट पता चलता है कि महर्षि जिन परमगुरु परमेश्वर के निमित्त सम्पूर्ण कर्मों के समर्पण का आदेश हमें देते हैं, वह ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि न होकर अपितु कोई दूसरी सर्वोच्च सत्ता है, जो क्लेश, कर्म, विपाक आशयों से रहित है। वह नित्य शुद्ध चित्स्वरूप परमात्मा सृष्टि के आरम्भ से अबतक होने वाले गुरुओं का भी गुरु है व अनादि सिद्ध है। अतएव वह सत्ता क्या है। इस प्रश्न का समाधान करते हुये 'भास्वती टीका' में भाष्यकार कहते हैं-

पुर्वे गुरवो हिरण्य गर्भादयः
कालेनावच्छिद्यन्ते।।'

अर्थात्- जिनकी सत्ता काल की सीमा के अन्तर्गत है, वह अधिकृत सीमा है। सद्गुरु तत्व उससे भी आगे की वस्तु है। जिसकी कोई अवधि नहीं है जिसका कोई अन्त नहीं है। वह है अनादि और अनन्त। शुद्ध चेतन है। वही सत्ता ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के अन्दर भी अपना प्रकाश रखती है अतः निर्णयात्मक सिद्धान्त की बात यह है-

यत्रावच्छेदनार्थेन कालो
न उपावर्तते सगुरुः।'

अर्थात् जिसका अन्त करने के लिये काल उपस्थित नहीं होता या दूसरे शब्दों में जो सत्ता काल के अधिकार से आगे है जिसका न कोई आदि है और न अन्त है वही सत्ता सद्गुरु तत्व है जिसके विषय में हमारे शास्त्र कहते हैं –

भयादस्य अग्निस्तपति,
भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च,
मृत्युर्धावति पंचमः।।

× × ×

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं,
नेमा विद्यु्तो भान्ति कुतोऽयमग्नि
तमेव भान्त मनु भाति सर्वं
तस्य भासं सर्व मिदं विभाति।।

अर्थात्-वही एक सत्ता इस तरह की है जिसके भय से अग्नि तपती है सूर्य तपता वायु और इन्द्र दौड़े-दौड़े फिरते हैं और काल हर समय आज्ञा में रहता है। वह स्वयं प्रकाश है न वहाँ सूर्य चमकता है न चन्द्रमा चमकता

है न बिजली का प्रकाश है। अग्नि का तो कहना ही क्या है। उसी के आलोक से सारा संसार आलोकित हो रहा है। वही सद्गुरु सत्ता परात्पर नित्य एवं नित्य पूज्य है। जिस शरीर को वह तत्व अपना अधिष्ठान स्वीकार करता है वह शरीर उसके तेज से प्रकाशित हो उठता है। नाम रूप से वन्दना उस शरीर की जाती है जिसके अन्दर वह तत्व प्रकाशित होता है। ये सभी प्रकरण यह प्रकट करते हैं कि वह अव्यक्त सत्ता जो सभी को प्रकाश देने वाली है सद्गुरु सत्ता ही है और उनके ही निमित्त सम्पूर्ण कर्मों का समर्पण कर देना या कर्म फलों का त्याग कर देना 'ईश्वर प्रणिधान' है। यह कोई मनमाना अर्थ नहीं है, बल्कि 'ईश्वर-प्रणिधान' शब्द से साफ दृष्टि गोचर होता है और उसको योगदर्शन के सब टीकाकारों ने स्वीकार किया है। तत्वतः 'ईश्वर-प्रणिधान' भक्ति मूलक निष्काम कर्म योग है जिसका उपदेश जगदात्मा श्रीकृष्ण ने अपने अनन्य सखा अर्जुन के प्रति गीता में किया है। यथा-

यत्करोषि यदश्नासि,
यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभ फलै रेवं मोक्ष्यसे कर्म बन्धनैः।
(गी० ६/२७-२८)

'हे अर्जुन! तुम भोजन, होम, दान, तप आदि जो कुछ भी करते हो, सब मेरे अर्पण कर दो। इस प्रकार (ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने पर) तुम शुभ-अशुभ फल रूप कर्मों के बन्धन से छुटकारा पा जाओगे।' योगवार्तिक कार विज्ञानभिक्षु ने (यो० द० २/१ और ३२) सूत्र के भाष्य की व्याख्या करते हुए 'कर्मार्पण' और 'फलार्पण' के विषय में कूर्म-पुराण के निम्नलिखित वचन की ओर संकेत किया है -

कामतोऽकामतो वापि यत्करोमि शुभाशुभम्।
तत्सर्वं त्वयि संन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम्॥
नाहं कर्ता सर्वमेतद् ब्रह्मैव कुरुते तथा।
एतद् ब्रह्मार्पणं प्रोक्त मृषिभिस्तत्त्व दर्शिभिः॥

हे ईश्वर! इच्छा से या अनिच्छा से जो कुछ भी शुभ या अशुभ कर्म करता हूँ वह तेरी प्रेरणा से करता हूँ। वह सब तेरे ही अर्पण है। जो कुछ करता है सो ब्रह्म ही करता है, मैं कुछ नहीं करता हूँ'- इस भावना पूर्ण विधि को तत्वदर्शी ऋषियों ने 'ब्रह्मार्पण कर्म' कहा है।'

यद्वा फलानां संन्यासं प्रकुर्यात् परमेश्वरे।
कर्मणामेतदप्याहुर्ब्रह्मार्पण मनुत्तमम्॥

'अथवा कर्मों के फलों को परमेश्वर के निमित्त अर्पण करदे- यह भी श्रेष्ट 'ब्रह्मार्पण' है।' भाष्यकार ने जो 'ईश्वर-प्रणिधान' की व्याख्या की है उसके दो अङ्ग है - (१) ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण कर्मों को समर्पण करना और (२) कर्मफल त्याग।

आनन्द कन्द भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कर्मफल त्याग या कर्मफल संन्यास को ही सर्व श्रेष्ठ आलम्बन बताते हुए कर्मफल के त्यागने वाले को 'त्यागी' 'योगी' और 'सन्यासी' कहा है —

संक्षेप में 'ईश्वर-प्रणिधान' योगाभ्यास की प्रथम वर्णाक्षरी है, इसके द्वारा अन्य साधनों के अभ्यास में भी दृढ़ता आती है।

कुछ चमत्कारी संस्मरण

अवधूत योगी श्री तैलंग स्वामी

[स्वामी श्रीदत्त योगेश्वर देवतीर्थ]

तैलंगस्वामी काशीमें आये थे तब वे अस्सी घाट पर निवास करते थे। उनका अधिकांश समय एकान्त में ही व्यतीत होता था। वे जन समुदाय से दूर ही रहा करते थे। कभी-कभी वे गंगा किनारे के घाटों पर घूमने निकला करते थे। एक दिन वे इसी प्रकार घूमने निकले थे। तुलसी घाट के समीप तुलसी दास के बगीचे के पास उन्होंने देखा कि एक कोढ़ी व्यक्ति कुष्ट रोग से आक्रान्त था और मरणासन्न था। उसे देखकर तैलंगस्वामी दयार्द्र हो उठे और रोगी के समीप बैठकर उसके देह पर हाथ फिराने लगे। कुछ ही क्षणों में इसका परिणाम आश्चर्यजनक निकला। रोगी की वेदना निवृत्त हुई और वह पूर्ण रोग मुक्त होते ही उठ बैठा। समीपस्थ स्वामी जी के चरण युगलपर अपना मस्तक रखता हुआ उन्हें अश्रुप्लावित करने लगा। यह देखकर वहां पर लोगों को भीड़ जमा होने लगी। स्वामी जी को यह उचित प्रतीत न हुआ। अतः उन्होंने वहां से चुपके से प्रस्थान किया। इस प्रकार उन्होंने जनहिताय योगविभूतिका चमत्कार करने पर भी अपने को लोगों की प्रशंसा से दूर कर लिया।

इस प्रकार की एक और घटना कुछ दिन बाद घटो। एक बंगाली सज्जन क्षय रोग से ग्रस्त थे। रोग असाध्य था। वैद्य, डाक्टर, हकीमों ने जवाब दे दिया था। उस बेचारे के लिए भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई आधार ही नहीं था। मरीज अब गंगा के किनारे निवास करने लगा। गंगा स्नान, गंगा जल पान और भगवान् के नाम का जप —इनको ही औषधि मानकर वह जीवन के शेष दिन बिताने लगा। एक दिन सद्भाग्य से उसे तैलंगस्वामी का दर्शन हुआ। उनके सम्मुख उसने अपना दुःख प्रकट किया। तैलंगस्वामी दया से भर गये और उस सज्जन की छाती पर हाथ रखते हुए कुछ क्षण तक उसके समीप आखें मूद कर बैठ रहे। आश्चर्य हुआ ही। वह बंगाली सज्जन उसी दिन से रोग-मुक्त हो गया।

एक दिन सायं काल में जब तैलंगस्वामी जी अस्सी घाट पर एकान्त साधना में डूबे थे तब सहसा उनके कानों पर किसी युवती के हृदय-विदारक रुदन की आवाज पड़ी। स्वामी जी ने आखें खोलकर आवाज की दिशा में दृष्टि-पात किया। दृश्य करुण था। जब वे उठ कर घटनास्थल पर पहुंचे तब पता चला कि एक नवविवाहित युवक को, जो सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त हुआ था, बांधकर उसके स्व-जन् वहां पर ले आये थे। और मृत देह को

गंगा में प्रवाहित करने की तैयारी कर रहे थे मृत युवक की युवती पत्नी अपने आकस्मिक वैधव्य से छाती पीटती हुई जोरजोर से रुदन कर रही थी। तैलंगस्वामी के लिए यह अत्यन्त असह्य सा हुआ। अतः उन्होंने मृतदेह का स्पर्श कर जिस स्थान पर सर्पदंश हुआ था उसी पर गंगा मिट्टी का लेप कर दिया कुछ ही क्षणों में मृत युवक जीवित हो गया और अंगड़ाई लेकर उठ खड़ा हुआ। जब कि तैलंगस्वामी गंगा में कूद कर तैरते हुए बहुत दूर निकल गये। इस प्रकार से उन्होंने स्वयं की सिद्धि का प्रदर्शन करते हुए भी गुप्त रखा।

कई श्रद्धा-भक्ति सम्पन्न व्यक्ति तैलंग-स्वामी जी को अपने घर पर भोजन कराने के हेतु ले जाया करते थे। एक दिन श्रीयुत केदार नाथ वाचस्पति नामक एक बंगाली भक्त के निमन्त्रण पर वे उनके घर भिक्षा के लिए गये। केदारनाथ ने बड़े स्नेह से उन्हें भोजन कराया। भोजनोपरान्त स्वामी जी के लिये पेय जल लाने के लिए वह अपने घर में गया। जब वह जल लेकर आया तो देखता है कि बाहर तैलंगस्वामी जी आनन्द से जल पी रहे थे। यह देखकर वह समझ न सका कि वहां पर उसके एवं स्वामी जी के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति था ही नहीं फिर भी किसने स्वामी जी को इतनी शीघ्र जल-ला दिया।

भारत के किसी एक स्टेट का राजा अपने राज कुटुम्ब के साथ काशी यात्रा के लिए आया था। दूसरे दिन सोमवार होने से उसने सपरिवार दशाश्वमेध घाट पर गंगा स्नान करने का निश्चय किया। महिलाओं के लिए चारों ओर परदे बांध दिये गये ताकि बाहर का व्यक्ति अन्दर में स्नान कर रही महिला-ओं को देख न सके। जब एक ओर महिलाएं स्नान कर रही थीं उस समय महिला कक्ष में दिगम्बर अवस्था में तैलंगस्वामी को खड़े देखकर राज परिवार की महिलाए अतीव लज्जित हुई और क्रोधावेश में आकर राजा को इस घटना से अवगत कराया। राजा ने क्रोधाग्नि बरसाते हुए अपने सिपा-हियों को आदेश दिया कि दिगम्बर आदमी को पकड़ कर अपने राजभवन में बन्द कर दो। आदेश का तुरन्त ही पालन हुआ। बाद में राजा ने अपने निवास स्थान में जाकर दिगम्बर श्री तैलंगस्वामी से आग बबूला होकर कई प्रश्न किये किन्तु प्रत्युत्तर एक भी न मिला। तैलंगस्वामी जड़वत्, शिलावत्, अचल शान्त थे। आखिर राजा ने गाली-गलौज करते हुए अपमानितकर उन्हें वहाँ से बन्धनमुक्त कर दिया। कहते है कि उसी रात्रि को राजा ने एक भयावह स्वप्न देखा जिसमें जटा जूट धारी भगवान् श्री काशी विश्वनाथ ने उसके समक्ष आ उपस्थित हो कर त्रिशूल दिखाकर और आंखो से क्रोधा-ग्नि बरसाते हुए गर्जना भरे शब्दो में कहा "तूने जो तैलंगस्वामी का घोर अपमान किया है वह मेरा ही अपमान है अतः शीघ्र उनके

पास जाकर उनसे क्षमायाचनाकर या तुरन्त हो काशी छोड़ कर चला जा"। इस भयंकर स्वप्न को देखने से राजा को निद्रा भंग हो गई और शेष रात्रि उसने अपने शयन खण्ड में इधर उधर टहलते हुए ही व्यतीत की। प्रातः-काल होते ही उसने अपने सिपाहियों को साथ में लेकर तैलंगस्वामी को खोजते हुए पंचगंगा घाट पर उनके दर्शन किये। उनसे क्षमा प्रार्थना की और चंदन-कुंकुम, फल-फूलों से उनकी पूजाकर आशीर्वाद मांगा। स्वामी जी ने प्रसन्न मुद्रा में आशीर्वाद देते हुए उसके मस्तक पर अपना वरद हस्त रख दिया। राजा स्वयं को धन्य समझता हुआ स्वस्थान गया। एक घटना इस प्रकार की है—उज्जैन का राजा काशी यात्रार्थ आया था। काशी नरेश से निमन्त्रण पाकर वह उनसे मिलने एवं साथ में भोजन करने के हेतु राम नगर गया था। सायं काल में वह राम नगर से नौका द्वारा काशी वापस लौट रहा था। उस समय उसने गंगा के प्रवाह में एक बड़े भारी देह वाले व्यक्ति को पद्मासन लगाकर सोया हुआ देखकर आश्चर्य व्यक्त किया। नाविकों से इस विषय में पूछ-ताछ करने पर पता चला कि वे काशी के सिद्ध महात्मा माने जाते हैं, बड़े चमत्कारी हैं। राजा की उनसे कुछ चमत्कार देखने की इच्छा होने पर नौका उनके समीप ले आयी गयी। राजा की प्रार्थना पर वे नौका में आ बैठे। बाद में राजा ने कुछ चमत्कार दिखलाने के लिए उनसे विनती की फलस्वरूप उन्होंने राजा की बहुमूल्यवान तलवार दिखाने की इच्छा प्रकट की। यह तलवार राजा को शौर्य के प्रतीक रूप में ब्रिटिश सरकार द्वारा भेंट की गयी थी। तैलंगस्वामी ने इस बहुमूल्य तल-वार को इधर-उधर देखते हुआ गंगा में फेंक दिया।

o

यह देख राजा आग बबूला ही हो गया। आंग्लभाषा में गालियां बरसाने लगा और हाथ-पैर पटकने लगा। किन्तु इसका लेप, मात्र भी प्रभाव तैलंगस्वामी पर न पड़ा। वे तो शांत, धीर, गम्भीर भाव से बैठे रहे जैसे कि कुछ हुआ ही न हो। मणिकर्णिका घाट पर नौका आ पहुंचते ही जब स्वामी जी नौका से उतरने लगे तब राजा ने क्रोधावेश में उनका हाथ पकड़ा और चिल्लाते हुए कहा कि मेरी तलवार दे दो अन्यथा मैं तुम्हें जेल में बन्द करवा दूंगा। स्वामी जी ने गंगा में हाथ डालकर दो तलवारें निकालते हुए राजा को संकेत द्वारा कहा कि इनमें से जो तलवार तुम्हारी हो उसे पहचान लो। यह देख राजा तो अवाक् रह गया। दोनों ही तल-वार एक समान थीं। अपनी तलवार को पह-चानना राजा के लिए कठिन तो क्या असम्भव हो गया। राजा की इस विचित्र-सी अवस्था को देखकर स्वामी जी ने गंगा-तीर पर की मिट्टी पर अक्षर लिखते हुए राजा को उपदेश दिया कि "जिस वस्तु को तू स्वयं पह-चानता नहीं है उसे मेरी-मेरी कहने में तुझे

लज्जा नहीं आती ? यह देह भी तो तेरी नहीं है। क्योंकि वह भी तेरे साथ में नहीं जायगी। यहां पर ही अन्तिम समय में छूट जायगी। इसलिए क्रोध करना छोड़ दे और सतोगुणी बनने का प्रयत्न कर। क्षणिक सुख प्रदायक भोगों में अमूल्य जीवन मत बरबाद कर। 'मैं' स्वरूप जो भगवान् है उनका साक्षात्कार करके जीवन सफल बनाले।"

इस प्रकार उपदेश देने के उपरान्त दो में से एक तलवार को राजा को दे दिया और दूसरी तलवार को गंगा में फेंक कर स्वामी जी ने वहां से पंचगंगा घाट की ओर प्रस्थान कर दिया। कहते हैं कि इस घटना का राजा पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा फलस्वरूप उसके जीवन में भारी परिवर्तन हो गया।

एक बार विजयनगरम् के राजा साहेब तैलंगस्वामी को श्रद्धा-भक्ति पूर्वक अपनी कोठी में ले गये और उनको स्नान कराकर कीमती वस्त्र और आभूषण पहनाकर चंदन, कुंकुम और पुष्पमाला से उनका सविधि पूजन किया। बाद में अपने ही हाथों से उनके मुख में सुस्वादु भोज्य पदार्थ देते हुए अच्छी तरह से भोजन कराया और सम्मान पूर्वक विदाई दी। जब तैलंगस्वामी जी मार्ग पर जा रहे उस समय किसी एक निर्धन व्यक्ति ने उनके समक्ष आकर गरीबी व्यक्त करते हुए उन्हीं को पहनाये गये वस्त्र, आभूषण इत्यादि उतार लिये और चल दिया। राजा को इसका पता चलने पर वह स्वामी जी के पास आया और इस घटना पर अपना दुःख व्यक्त किया। इस पर स्वामी जी ने मुस्कराते हुए लिख कर समझाया कि भगवान् ने दिया था और भगवान् ले गये। जब एक बार वे वस्तुएं समर्पित कर दी गयीं तब वे मेरी हो गयी थीं अतः तुम्हें दुःखी होने की क्या जरूरत है। स्वामी जी ने इस प्रकार का उपदेश देकर राजा को समर्पण भाव का गूढ रहस्य समझाया जिससे उसे शांति मिली।

तैलंगस्वामी जी दिगम्बर अवस्था में ही रहते थे और प्रायः गंगा के घाटों पर ही विचरण किया करते थे। भक्तों के आग्रह से वे कभी-कभी शहर में उनके घरोंपर भी जाया करते थे। इस प्रकार एक बार वे एक भक्त का निमन्त्रण स्वीकर कर शहर के मार्ग से जा रहे थे तब पुलिस ने उन्हें इस प्रकार से विवस्त्र घूमने पर आपत्ति उठायी और पकड़ कर जेल में भिजवा दिया। इस घटना का पता जब स्वामी जी के भक्तों को चला तब उन्होंने स्वामी जी को मुक्त करवाने के हेतु कोर्ट में दरखास्त दी। दूसरे दिन स्वामी जी कोर्ट में लाये गये। भक्तों की ओर से वकील रखा गया था उसने अंग्रेजी न्यायाधीश को बताया कि स्वामी जी तो अवधूत हैं। उनके लिए वस्त्र पहनना या न पहनना, अमुक पदार्थ खाना या न खाना, शीत-उष्ण, हर्ष-शोक वगैरह सब समान हैं। यह सुनकर न्यायाधीश को स्वामी जी की परीक्षा लेने की इच्छा हुई। उसने पूछा कि मैं जो कुछ खाऊंगा वह तुम्हारे स्वामी खा सकेंगे ? यह सुनते ही तैलंगस्वामी ने मस्तक हिलाते हुए स्वीकृति दी

और साथ ही साथ इशारे से पूछ दिया कि पहले जो कुछ पदार्थ वे खायेंगे वह न्यायाधीश को भी खाना पड़ेगा। न्यायाधीशा- ने इस चुनौती को सहर्ष स्वीकार कर लिया क्योंकि उसे विश्वास था कि भारतीय साधु पुरुष फल दूध, आटा दाल-चावल इत्यादि सात्विक आहार ही ग्रहण करेगा। उसे मांस-मछली-अण्डे या मद्य खाने-पीने में भी कोई आपत्ति न थी क्योंकि वह तो उसका प्रति दिन का आहार था। चुनौती के अनुसार स्वामी जी को पहले अपना खाना बताने का आदेश हुआ। यह सुनते ही उन्होंने खड़े खड़े ही अपने हाथ पर मल त्याग किया और खाने लगे। अंग्रेज न्यायाधीश के लिए यह दृश्य देखना तक असह्य हो गया अतः अपना मुँह घुमा लिया और स्वामीजी को तुरन्त ही मुक्त कर देने का आदेश दिया।

ऐसा ही प्रसंग कुछ वर्षों के बाद फिर एक बार आया उस समय एक नवनियुक्त अंग्रेज न्यायाधीश काशी में आया था। कहते हैं कि वह नगर में कानून और शिष्टताका चुस्ती से पालन करने का हिमायती था और स्वभावका भी बड़ा तेज था। जनता उससे बहुत डरती थी। एक दिन जब वह अपनी मेम साहब को साथ लेकर घोड़ा गाड़ी द्वारा नगर के प्रधान मार्ग पर जा रहा था उस समय एक स्थान पर उसने सामने से दिगम्बरा वस्थामें चले आ रहे तैलंगस्वामीजी को देखा। मेम सहाब तो यह देखकर क्रुद्ध हो गयी और अपने पति को डाटती-फटकारती कहने लगी कि तुम्हारे रहते हुए भी इस नगर में कानून और शिष्टताकी ऐसी दुर्दशा है। पत्नी का कटाक्ष पति के लिए असह्य था। उसने घोड़ा-गाड़ी रुकवा कर समीपस्थ पुलिस थाने से बुल-वाया और आदेश दिया कि उस नंगे धडंगे साधु को तुरन्त पकडकर जेल में बन्द करो और उसे कल प्रातः कचहरी में हाजिर करो। आदेश का शीघ्र ही पालन हुआ। पुलिस ने स्वामीजी को पकड़कर जेल में बन्द कर दिया किन्तु वहां पर एक आश्चर्य की घटना घटी। पुलिस देखती है कि जेल के कमरे का द्वार बन्द है और बाहर मजबूत ताला लगा हुआ है जब कि तैलंगस्वामी जेल के बहार के बरा-मदे में मस्त होकर घूम रहे हैं। जब उन्हें दो-तीन बार पकड-पकडकर जेल में बन्दकर देने पर भी वे बहार मधूते हुए दिखायी पड़े तब हारकर पुलिस ने यह घटना अंग्रेज न्याया-धीश के कान तक पहुंचायी। इस पर न्याया-धीश ने स्वयं आकर इस बात की सत्यताकी परीक्षा की और तैलंगस्वामी से क्षमा-याचना करते हुए उन्हें सम्मानपूर्वक वहां से बिदा दी। जाते हुए स्वामी ने उस अंग्रेज न्यायाधीश को इंगित द्वारा उपदेश किया कि अपनी इच्छा शक्ति-को नियंत्रित करने पर सब चमत्कार किये जा सकते हैं। इच्छा होते देह जेल से बाहर निकाली जा सकती है, अदृश्य भी की जा सकती है, और एक ही समय में कई स्थानों में विभिन्न रूपों में दिखायी भी

जा सकती है। कहते हैं कि स्वामीजी की योग शक्ती से न्यायाधीश बहुत प्रभावित हुआ था। बाद में उसने इस प्रकार का एक आदेश पत्र लिख कर स्वामी जी के भक्तों को दया था जिससे भविष्य में कोई भी व्यक्ति स्वामी जी को किसी भी प्रकार से परेशान न कर सके।

एक शिक्षित सज्जन ने जो काशी यात्रार्थ आया था, किसी से सुना था कि "तैलंग स्वामीजी तो साक्षत् विश्वनाथ हैं" किन्तु इस बात पर विश्वास न होने से उसने स्वयं इसकी सत्यता खोजने का निर्णय किया। वह कहीं से १०८ अच्छे और बड़े बिल्वपत्र ले आया और प्रत्येक पर चंदन से स्वहस्त से प्रणवयुक्त 'नमः शिवाय' मन्त्र लिख दिया। बाद में विश्वनाथ के मन्दिर में जाकर शिवलिंग पर उन समन्त्रक बिल्व-पत्रों को चढ़ा दिया और भगवान् को प्रणाम करके वहां से सीधा पंच गंगा घाट पर आया जहां पर तैलंगस्वामी एक शिला पर बैठे हुए थे। स्वामीजी को देखते ही वह अवाक् रह गया। देखा कि उनके मस्तक पर वही मंत्र युक्त कुछ बिल्व पत्र विभूषित थे और कुछ उनके चारों ओर बिखरे पड़े थे जिन्हें उसने कुछ समय पहले ही विश्वनाथजी के शिवलिंग पर चढ़ाये थे। अब उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि तैलंगस्वामी काशी के सचल विश्वनाथ हैं। गद्गद् होकर उसने स्वामीजी के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया और अपनी अल्प बुद्धि द्वारा उनकी महानता नापने के मूर्खतापूर्ण प्रयत्न के लिए उनसे क्षमा याचना की। कहते हैं कि बाद में स्वामीजी ने उसे कुछ योग क्रियाएँ समझायी थीं। फलस्वरूप उसको जीवनमें शांति प्राप्त हुई थी।

तैलंगस्वामीजी के सेवकों में एक बंगाली ब्रह्मचारी था जिसका नाम था उमाचरण मुखोउपाध्याय। उसने कई वर्षों तक स्वामीजी की श्रद्धा-भक्ति पूर्वक सेवा सुश्रुषा की थी। एक दिन जब स्वामीजी बेनी माधव के मन्दिर के समीप की अपनी गुफा में अकेले बैठे हुये थे तब उमाचरण ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि वे उसे आज के ही शुभ दिन पर भगवती मंगलागौरी के दर्शन करवा दें। यह सुन कर स्वामीजी ने उसे कहा कि ऊपर के कमरे में जाकर देख आओ कि वहां पर मंगलगौरी की मूर्ति प्रतिष्ठित है या नहीं। उमाचरण ने कमरे में जाकर देखा कि श्याम वर्ण के पत्थर की सुन्दर मूर्ति, जिनकी वह प्रतिदिन पूजा करता है वह, अपने स्थान पर पूर्ववत् खड़ी थी। गुफा में आकर उसने स्वामीजी को वृतान्त सुनाया। बाद में स्वामी जी भावावेश में आकर अश्रु बहाते हुए शिशुवत् पुकारने लगे —'माता मंगलगौरी। यहां पर आओ - मां गौरी। यहां आजाओ।' इतने में तो किसी के पैरों के नूपुर की मधुर आवाज सुनायी पड़ी और कुछ ही क्षणों के उपरान्त वहां पर एक छोटी-सी सुन्दर सुकोमल कुमारिका शृंगार सजकर आ

उपस्थित हुई । उनके आगमन से ही गुफा में चारों ओर दिव्य प्रकाश फैल गया, अपूर्व सुगन्ध का प्रसरण हुआ, वातावरण में आनन्द ही आनन्द छा गया । अब उमाचरण समझ नहीं पा रहा था कि क्या किया जाय । उसकी किंकर्तव्यमूढ़ता देखकर स्वामी ने उसे कहा कि देवी की पूजा की तैयारी कर । देख देवी आकर खड़ी है । यह सुनकर उमाचरण होश में आया । उसे आज ऐसा अनुभव हो रहा था कि कई जन्मों की गाढ़ी निद्रा से वह जाग्रत हो रहा है । आज गुरु कृपा एवं इष्ट देवी की कृपा एक साथ ही उस पर बरस रही थी अतः उसने स्वयं को बड़ा ही भाग्यवान् समझा । पूजा की सर्व तैयारी कर लेने के उपरान्त उसने गुरु की आज्ञा लेकर बड़े ही भक्ति भाव से, हर्षाश्रु बहाते हुए, भगवती मंगला गौरी की सविधि पूजा की, प्रसाद निवेदन किया, आरती की और स्तवस्तोत्रादि पाठकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुए आत्मनिवेदन का भाव प्रकट किया । पूजा समाप्त हो जाने पर श्री तैलंगस्वामी ने पुनः भाव-विभोर होकर देवी की ओर हाथ जोड़ते हुए नत मस्तक होकर कहा ——

"मातः ! अब तुम स्वस्थान में लौट जाओ ।" उनके शब्द का आश्चर्यकारक प्रभाव पड़ा । जैसे भगवती आयी थीं वैसे ही पैरों के घूंघरू की आवाज से वायुमण्डल को ध्वनित करती हुई वापस लौट गयी और कमरे में जाकर अपनी वेदी पर खड़ी होकर पुनः पत्थर की मूर्तिरूप में रूपांतरित हो गयी। शिष्य उमाचरण के लिए तो यह अनुभव अद्भुत था । उसने स्थूल चक्षुओं द्वारा भगवती के दिव्य देहका दर्शन किया था, सीमा में रहकर भी असीमका साक्षात्कार किया था । उसने आज गुरु की महान् शक्ति का अनुभव किया था जिससे उसके रोम-रोम में आनन्द रम रहाथा। धन्य है शिष्य उमाचरण

बगाल के प्रसिद्ध संतपुरुष श्री विजय कृष्ण गोस्वामी को प्राथमिक दीक्षा श्री तैलंगस्वामी जी से ही प्राप्त हुई थी । तत्पश्चात् वे कई दिन तक अपने गुरु के सान्निध्य में रहे थे और रहस्यमयी योग साधना की थी । उन्होने अपने इस विषय के अनुभव एक ग्रन्थ में लिखे है ।

दक्षिणेश्वर के सुप्रसिद्ध सन्त श्री रामकृष्ण परमहंस ई० स० १८६८ में अपने परम गुरु (अर्थात् उनके तांत्रिक गुरु भैरवीमाता के भी गुरु देव) श्री तैलंगस्वामी के दर्शनार्थ काशी आये थे । उस समय उनके साथ उनके कई भक्त लोग भी थे ।

रामकृष्ण — प्रेम किसे कहते हैं ?

तैलंगस्वामी —अपने इष्टदेव के नाम-जप कीर्तनादि में एकता न होने पर नयनों से जो अश्रुधारा बहती है उस समय की उस अवस्था को प्रेम कहते हैं ।

कहते हैं कि इस प्रकार के सत्यसार-युक्त संक्षिप्त उत्तर पाकर श्री रामकृष्ण की भाव समाधि लग गयी थी । उनकी आंखों से प्रेमाश्रु

धारा बहने लगी और तालियां देते हुए वे वर्तुलाकार नाचने लगे थे ।

दूसरे दिन श्री रामकृष्ण परमहंस की इच्छा अपने परमगुरु श्री तैलंगस्वामी को मिष्टान्न की भिक्षा देने की हुई । उन्होंने अपने सेवक श्री मथुराबाबू द्वारा बाजार से आधा-मन पायस् मंगवाया और उसे लेकर तैलंग-स्वामी-के ब्रह्माघाट स्थित मठ में गये । उस समय स्वामीजी पूर्ववत् शांतभाव-से बैठे थे। श्री रामकृष्ण ने उन्हें भोजन कराने की अपनी इच्छा व्यक्त-की और आदेश पाने पर वे प्रसन्नचित होकर स्वामीजी को स्वहस्त से पायस् खिलाने लगे । कहते हैं कि अल्प समय में ही वे आधामन पायस खा गये । इस घटना से उपस्थित सर्व लोग आश्चर्यान्वित हो गये । बाद में श्री रामकृष्ण ने अपने भक्तों के साथ श्री तैलंगस्वामी जी की प्रदक्षिणाकी और उनका आदेश पाकर वहां से चलकर अपने निवास स्थान पर आये ।

श्री तैलंगस्वामी ने ई० १८७७ में अपने शिष्य और भक्तों को बता दिया था कि अब उनके जीवन का कार्य प्राय: समाप्त हो गया है अत: पांच वर्ष के भीतर ही वे स्वेच्छा से देह त्याग कर देंगे ।

समय को जाने में कोई देरी नहीं लगती। देह त्याग का अपना समय केवल एक मास बाकी था । इस बीच उन्होंने अपने शिष्य एवं अधिकारी भक्तों को उपदेश, योगक्रिया का मार्ग दर्शन इत्यादि देकर उन लोगों का पर-पथ प्रशस्त किया । काशी में विद्वानों को बुलाकर विद्वत् सभा का आयोजनकर शास्त्र-चर्चा एवं शंकाओं का निवारण किया । अपने देह त्याग के पश्चात् देह को किस प्रकार से पत्थर-की पेटी में बन्द करके श्रीदत्तपादुका नामक स्थान पर से उसे गंगा में जल समाधि देना इत्यादि भी समझा दिया । बाद में वे अपनी गुफा में चले गये और द्वार बन्द करते हुए आदेश दिया कि जब तक वे अन्दर से गुफा का द्वार न खोलें तबतक कोई व्यक्ति बाहर से द्वार को न खटखटावे और न शोर-गुल मचाकर विघ्न करे । यह समाचार शहर में फैलने पर वहां लोगों की भीड़ जमा होने लगी । सब लोग गुफा का द्वार खुलने का प्रतीक्षा करने लगे । जब मध्याह्न का समय बीत गया तब सहसा द्वार खुला । श्री तैलंग-स्वामी का समग्रदेह अलौकिक दिव्य आभा से दीप्त था । वे बाहर आये, उपस्थित असंख्य लोगों को आशीर्वाद दिया और पंचगंगा घाट की ओर चल पड़े । सबने उनका अनुसरण किया । पत्थर की पेटी एवं अन्यान्य वस्तुमें पूर्व निर्देशके अनुसार घाट पर पहले से ही पहुंचवा दी गयी थीं । स्वामी ने वहां पहुंच कर अपने दोनों हाथ ऊंचे करते हुए सबको पुन: आशीर्वाद दिया और पत्थर की बड़ी पेटी में पद्मासन लगाकर बैठ गये । उनके आदेशानुसार पेटी को बड़ी भारी पत्थर की शिला से बन्द कर दिया गया । कहते हैं कि जब पेटी को लेकर नौका गंगा की गोद में

तैरने लगी तब पेटी में से दिव्य प्रकाश बाहर निकलकर आकाश में चले जाते हुए असंख्य भक्तों ने देखा। "हर हर महादेव" और "बाबा विश्वनाथ की जय" के साथ ही साथ "तैलंगस्वामी महाराज की जय" की गगन-भेदी ध्वनि से समस्त वायुमण्डल गूंज उठा

ई० सन् १८८१ की पौष शुक्ला एकादशी और रोहिणी नक्षत्र वाले शुभदिन, संध्या समय से पहले ही, महायोगी अवधूत श्री तैलंगस्वामी ने स्वेच्छापूर्वक इह-लीला समाप्त कर दी। जिस मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र एवं दिन को उन्होंने जन्म लिया था उसी मास-पक्ष, तिथि नक्षत्र एवं दिन को उन्होंने स्वेच्छा से देह त्याग किया। उन्होंने आत्म साक्षात्कार करने के उपरान्त जन कल्याण करते हुए २८० वर्ष की परिपूर्ण आयु एक महान् योगी की तरह बितायी थी।

कहते हैं कि जिस समय उनके देह वाली पत्थर की पेटी गंगा में डबाया जा रही थी ठीक उसी समय स्वामी जी के कुछ विशिष्ट भक्तजन कलकत्ते से वहां आ पहुंचे। उन सब भक्तों को अपने गुरुदेव का मुख दर्शन करना था अतः उनके अतीव आग्रह से पेटी को खोला गया किन्तु अन्दर देखने पर वहां स्वामी जी का मृतदेह नहीं था। केवल कुछ सुगन्धित पुष्प मालायें दिखायी पड़ीं। इस अद्भुत घटना से सब जन अवाक् रह गये। स्वामीजी ने यह आखिरी चमत्कार बतलाकर लोगों को स्पष्टकर दिया कि उनका देह पार्थिव होनेपर भी चिन्मय था। मानव रूप में वे महामानव थे, सिद्ध पुरुष थे।

पत्थर की पेटी पुनः बन्द करने के पश्चात् गंगा में डुबायी गयी। लोग कहने लगे कि उनी को जल समाधि दी गयी, वे जल में जलरूप बन गये।

उसी संध्या के समय असंख्य लोगों ने स्वामी जी का स्मरण करते हुए गंगास्नान किया। घाटों पर कुम्भ मेला जैसा दृश्य हो गया था। प्रत्येक जनके मुख से यही बात बारबार निकल रही थी—"आज काशी का सचल विश्वनाथ कैलास धाम को चला गया।"

धन्य है ऐसा संतपुरुष। धन्य है संतभूमि भारत। धन्य है अविमुक्त क्षेत्र काशी।

सलाह तो अनेक प्राप्त करते हैं, किन्तु उससे लाभ उठाना बुद्धिमानों को ही आता है।

— साइरस

× × × ×

कोई अपमान तुम्हें गिरा नहीं सकता तुम अपना पतन अपने आप ही करते हो।

—अज्ञात

सम्पादकीय–

गांधी शताब्दि के सन्दर्भ में –

सन १९६९ ई० गांधी शताब्दि के अन्तिम वर्ष के रूप में हमारे सामने है। २ अक्टूबर १९६९ को पूरे सौ वर्ष हो जायेंगे उस युग परिवर्तनकारी महापुरुष के जन्म को, जिसने सत्य और अहिन्सा को सम्बल बनाकर हमें दासता के बन्धनों से विमुक्त कर स्वतंत्रता के आंगन में ला खड़ा किया। हमारी बन्धन मुक्ति के कुछ और कारण भी हो सकते हैं किन्तु सत्य और अहिन्सा को आधार बनाकर निहत्थे मुट्ठी भर लोगों को एक ऐसी सशस्त्र शक्ति के सामने-जिसके राज्य में कभी सूर्यास्त ही नहीं होता था साहस के साथ खड़ा कर देना-इस महा पुरुष का ही काम था जिसे इतिहास में मोहनदास करमचन्द गांधी के नाम से सदा गौरव से याद किया जाता रहेगा।

गांधी जी राजनीतिक नेता थे या आध्यात्मिक सन्त पुरुष, यह प्रश्न विवादास्पद उत्तर में रूप के हल किया जा सकता है किन्तु यह निर्विवाद है कि गांधी जी की राजनीति धर्म और आध्यात्मिक जीवन से शून्य नहीं थी वे धर्म विहीन राजनीति को लगड़ी राजनीतिक कहकर पुकारा करते थे। इसी लिए उन्होंने अपनी राजनीति का आधार ही सत्य और अहिन्सा पर रक्खा। उनका समूचा जीवन सत्य के प्रयोगों का जीवन रहा। सत्य को ही उन्होंने ईश्वर माना और अहिन्सा को उसके साक्षात्कार का साधन बिना इन दोनों के मनुष्य या मनुष्य समाज कभी अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। गांधी और गांधी जी की शिक्षाओं का यही सार है इसी को हमने गांधीवाद का नाम दिया है। गांधीवाद का यह आधार अन्तर्राष्ट्रिय ख्याति अर्जित कर चुका है। अमेरिका के स्वर्गीय किंग मार्टिन लूथर गांधीवाद के मूर्तरूप थे और भी न जाने कितनों के व्यक्तिगत जीवन में गांधी जी के इन आदर्शों ने निखार पैदा किया है। गांधी जी के सत्य और अहिन्सा के आधार कुछ उनके अपने नये आधार नहीं हैं किन्तु यह वे ही आधार और आदर्श हैं जिन्हें प्राचीन ऋषि-मुनियों ने मानव-समाज के अभ्युदय और उत्कर्ष के लिए पहले से निर्धारित किया हुआ है। यम और नियमों का जिन्हें थोड़ा बहुत ज्ञान है वे जानते हैं कि जीवन की सफल साधना के लिए जिन यमों के पालन का आदेश योग दर्शन के ऋषि ने दिया है उनमें अहिन्सा और सत्य ही को पहला नम्बर दिया गया है। भगवान पतञ्जलि कहते हैं —

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः

गांधी जी पतञ्जलि के इसी सूत्रके अपनाने पर जोर देते रहे। स्वयं उनका जीवन भी इसी सूत्र का मूर्तिमान रूप था गांधी शताब्दि के सन्दर्भ में हम भारत के जन जनसे यह अपील करना चाहते हैं कि वे इस– यौगिक सूत्र के अनुसार अपने जीवन का निर्माण करके न सिर्फ अपना कल्याण करें किन्तु इस देश को भी आध्यात्मिकता के पथ पर आगे बढ़ाने में अपना सक्रिय सहयोग दें। –दिव्य

आवश्यक निवेदन

लेखकों से—

१—'सिद्धयोग' में योगाङ्ग सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित होते हैं अतः इतर विषयों से सम्बन्धित लेखों को प्रकाशनार्थ भेजने की आवश्यकता नहीं।

२—लेख मौलिक ही होने चाहिए। किसी ग्रन्थ विशेष से लिये हुए लेखों पर उस ग्रन्थ के लेखक का नाम ही रहना चाहिए। ऐसे लेखों पर प्रेषक को अपना नाम प्रेषक के रूप में ही देना चाहिए लेखक के रूप में नहीं।

३—लेख सुस्पष्ट अक्षरों में स्याही से कागज के एक ही ओर हाशिया छोड़कर लिखे जाने चाहिए। पेन्सिल से लिखे हुए लेख हम प्रकाशित करने में असमर्थ होंगे।

—संयुक्त सम्पादक

आश्रम के प्रेमी साधकों से—

श्री सद्गुरुदेव जी के पास आश्रम के प्रेमियों, साधकों, शिष्यों और जिज्ञासुओं के बहुसंख्यक पत्र प्रतिदिन आया करते हैं जिनमें शीघ्र उत्तर देने का आग्रह रहता है लेकिन पत्र प्रेषक अपना पूरा पता प्रायः नहीं लिखते—इसलिए चाहते हुए भी उन्हें जब तक उनका पूरा पता न देख लिया जाय—शीघ्र उत्तर देना श्री सद्गुरुदेव के कार्यालय के लिए सहज सम्भव नहीं होता। अतः पत्र प्रेषकों से निवेदन है कि या तो पते सहित जवाबी पत्र भेजा करें या अपना पूरा पता अलग से साफ-साफ लिख दिया करें ताकि उनको शीघ्र उत्तर दिया जा सके।

—आश्रम-व्यवस्थापक

कमल-दल

कमल भारतीय संस्कृति का प्रधान प्रतीक है। कमल को हम सारे प्रतीकों का राजा भी कह सकते हैं। भारतीय संस्कृति में कमल की सुगन्ध आ रही है। अतः इस कमल-पुष्प में इतना बड़ा और अच्छा अर्थ कौन-सा है?

ईश्वर के सारे अवयवों को हम कमल की उपमा देते हैं। कमल-नयन, कमल-वदन, कर-कमल, चरण-कमल, हृदय-कमल, आदि कहने में कौन-सी मधुरता है? कमल में अलिप्तता का गुण है। पानी में रहकर भी वह पानी के ऊपर रहता है, कीचड़ में रहकर भी वह कीचड़ के ऊपर फूलता है। कमल अनासक्त है। हम कहते हैं कि ईश्वर करके भी अकर्ता ही रहता है। वह इस सारे संसार का व्यवहार चलाता है; लेकिन यह सारा व्यवहार वह अनासक्त रहकर ही चलाता है।

कमल में अलिप्तता है। इसी प्रकार उसमें दूसरा गुण यह है कि वह बुराई में से भी अच्छाई ग्रहण कर अपना विकास करता है। वह कीचड़ में से भी रमणीयता ग्रहण कर लेता है। वह रात-दिन तपस्या करके अपना हृदय मकरंद से भर लेता है।

उसका मुँह सूर्य की ओर रहता है। प्रकाश को देखते ही वह फूल उठता है। प्रकाश के समाप्त होते ही वह बन्द हो जाता है। प्रकाश मानो कमल का प्राण है। भारतीय संस्कृति प्रकाशोपासक है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' भारतीय संस्कृति की आरती है।

खिले हुए कमल-पुष्प के गीत गाते हुए सैकड़ों भ्रमर आते हैं; लेकिन कमल उनकी ओर ध्यान नहीं देता। भारतीय संस्कृति अपनी प्रशंसा के गीत-गाती हुई बैठी नहीं रह सकती। हां, यदि संसार चाहे तो भले ही उसकी प्रशंसा करे। भारतीय संस्कृति तो बिना ही हल्ले और गाजेबाजे के पल्लवित-पुष्पित होती रहेगी। संसार को गीता की स्तुति करने दीजिये। उसे बुद्ध की महिमा गाने दीजिये। उसे गांधीजी को महात्मा कहने दीजिये। उसे रवीन्द्रनाथ को महर्षि कहने दीजिये: भारतीय संस्कृति अपने बालकों से कहती है—कर्मकरो, निंदा-स्तुति छोड़कर अपने ध्येय के साथ कमलवत् एकरूप हो जाओ।

स्व० साने गुरु)

--देवीप्रसाद शर्मा, 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, वसई कर्ना ताजगंज आगरा-१